Shrimat
Swami Nikhileshwaranandaji
Maharaj

रामकृष्ण निलयम्, जयप्रकाश नगर, छपरा-८४१३०१ (बिहार)

# विवेक शिखा के आजीवन सदस्य

२१. श्रीराम बिलास चौधरी—सुपौल, दरभंगा (बिहार)
२२. डा० रमेश चन्द्र प्रसाद —देवघर (बिहार)
२३. श्री मातादीन मिश्र—सारण (बिहार)
२४. एम० एम० नावालगी—कादरा (कर्नाटक)
२५. श्री हेमराज साहू—नरसिंहपुर (म० प्र०)
२६. डा० प्रकाश चन्द्र मिश्र—पटना (बिहार)
२७. श्री विनोद ब्रजभूषण अग्रवाल —नागपुर (महाराष्ट्र)
२८. श्री केशरदेव भालोटिया—जरमुण्डी (बिहार)
२९. श्री धर्मवीर शर्मा —खण्डवाया (उत्तर प्रदेश)
३०. श्री शिवशंकर सुखदेव पाटील—शेगाँव (महाराष्ट्र)
३१. श्री गजानन महाराज संस्थान—शेगाँव (महाराष्ट्र)
३२. श्री दयाशंकर तिवारी—
लाल बाजार, सीवान (बिहार)
३३. श्री राजकुमार गडोडिया—अपर बाजार (राँची)
३४. कुमारी चुक चुक—बेलगाँव (कर्नाटक)
३५. डॉ० श्रीमती वीणा कर्ण —पटना (बिहार)
३६. डॉ० सम्पत पाटील—भदोल (महाराष्ट्र)
३७. श्री रमाशंकर राय—बाराणसी
३८. श्री आर० के० यादव—फैजाबाद
३९. कुमारी अल्पना सकलेचा—बम्बई
४०. श्री हिम्मत लाल रणछोड़दास शाह—बम्बई
४१. श्री नीरज गुप्ता—रामपुर (मध्य प्रदेश)
४२. डॉ० गीता देवी—४४, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४३. डॉ० मीरा पाण्डेय—४१, टैगोर टाउन, इलाहाबाद
४४. श्री रामानन्द गुप्ता—बिसवा (उत्तर प्रदेश)
४५. श्री निशीथ कुमार बोस—तपन प्रिंटिंग प्रेस, पटना
४६. श्री नरेश कुमार कश्यप—नागपुर (महाराष्ट्र)
४७. श्रीरामकृष्ण विवेकानन्द समिति--अमरावती, महाराष्ट्र
४८. डॉ० दर्शन लाल—फुराली (पंजाब)
४९. श्री गोविन्द डनढ़निया—कलकत्ता (प० बंगाल)
५०. श्री निखिल शिवहरे—धमोह (म० प्र०)
५१. श्री बी० भी० मागोरी—कलकत्ता (प० बंगाल)
५२. श्री पवन कुमार शर्मा—समस्तीपुर (बिहार)
५३. श्री विनुभाई भलाभाई पटेल—खेड़ा (गुजरात)
५४. श्री एस० सी० डागरीवाला—कलकत्ता (प० बं०)
५५. श्री गोपाल कृष्ण छत्ता—जयपुर (राजस्थान)
५६. श्री बृजेश चन्द्र बाजपेई —जयपुर (राजस्थान)
५७. श्री बनवारी लाल सर्राफ—कलकत्ता (प० बं०)
५८. श्रीमती गौरी चट्टोपाध्याय—एलेन गंज, इलाहाबाद
५९. डॉ० श्यामसुन्दर बोस, दूधपुरा बाजार, समस्तीपुर

# इस अंक में


| | | पृष्ठ |
|---|---|---|
| १. श्री रामकृष्ण ने कहा है | | १ |
| २. भजन | | २ |
| ३. गाजीपुर और स्वामी विवेकानन्द | (सम्पादकीय सम्बोधन) | ३ |
| ४. मेरे जीवन में श्रीरामकृष्ण | श्रीमती कैरोलिन बी केन्नी | ७ |
| ५. माताओं और बहनों के लिए दो शब्द | स्वामी हर्षानन्द | १० |
| ६. इहासने शुष्यतु मे शरीरम् | स्वामी ब्रह्मेशानन्द | १४ |
| ७. श्रीरामकृष्ण और नाम संकीर्तन | स्वामी विदेहात्मानन्द | २० |
| ८. स्वामी अद्भुतानन्द की जीवन कथा | श्री चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय | २४ |
| ९. समाचार एवं सूचनाएं | | २७ |

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत

उठो जागो और लक्ष्य प्राप्त किए बिना विश्राम मत लो

# विवेक शिखा

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द-भावधारा की एकमात्र हिन्दी मासिकी

वर्ष—७ मई—१९८८ अंक—५

इष्टदेव का हृदय-कमल में रूप अनूप दिखा। निजानन्द में रखती अविचल विमल 'विवेक शिखा'॥

संपादक

डॉ० केदारनाथ लाभ

सहायक संपादक

शिशिर कुमार मल्लिक

श्याम किशोर

संपादकीय कार्यालय।

रामकृष्ण निलयम्

जयप्रकाश नगर,

छपरा—८४१३०१

(बिहार)

सहयोग राशि

| | |
|---|---|
| आजीवन सदस्य | ३०० रु० |
| वार्षिक | २० रु० |
| रजिस्टर्ड डाक से | ३५ रु० |
| एक प्रति | २ रु० ५० पैसे |

रचनाएँ एवं सहयोग - राशि संपादकीय कार्यालय के पते पर ही भेजनेकी कृपा करें।

## श्रीरामकृष्ण ने कहा है

( १ )

पहले संसार करने के बाद तुम भगवान् को प्राप्त करने आये हो; ऐसा न करके अगर तुम पहले भगवान् का लाभ कर लेते और बाद में संसार करते तो तुम्हें कितना आनन्द मिलता !

( २ )

घर के लोग यदि जागते हों तो उस घर में चोर कभी नहीं घुस सकता, वैसे ही, यदि तुम सदा जागृत रहो तो तुममें किसी प्रकार के बुरे विचार आकर तुम्हारे सद्भावों का हरण नहीं कर पाएँगे।

( ३ )

तुम दूसरों से जिस काम की अपेक्षा रखते हो वह तुम स्वयं करो।

( ४ )

घर की बहू सास-ससुर, जेठ-जेठानी सब का आदर सम्मान करती है, सब की सेवा करती है, किसी की अवज्ञा या उपेक्षा नहीं करती। परन्तु अपने पति को वह सब से अधिक चाहती है। इसी तरह तुम भी अपने इष्टदेवता पर दृढ़ एकनिष्ठ भक्ति रखो पर अन्य देवी-देवताओं की उपेक्षा मत करो। सब देवों के प्रति श्रद्धा रखो, कारण सभी देव एक ही परमेश्वर के रूप हैं।

( ५ )

जिसमें विश्वास है, उसमें सब है, विश्वास नहीं तो कुछ भी नहीं।

# भजन

देख दुःखका वेष धरे,
मैं नहीं डरूँगा तुमसे नाथ ।
जहाँ दुःख वहाँ देख तुम्हें,
मैं पकड़ूँगा जोरों के साथ ॥

नाथ ! छिपा लो तुम मुँह अपना,
चाहे अति आँधियारे में ।
मैं लूँगा पहचान तुम्हें,
इक कोने में जग सारे में ॥

रोग—शोक, धनहानि, दुःख,
अपमान घोर, अतिदारुणक्लेश ।
सब में तुम, सब ही है तुममें,
अथवा सब तुम्हारे ही वेश ॥

तुम्हरे बिना नहीं कुछ भी जब,
तब फिर मैं किस लिये डरूँ ।
मृत्यु-साज सज यदि आओ तो,
चरण पकड़ सानंद मरूँ ॥

दो दर्शन चाहे जैसा भी,
दुःख वेष धारण कर नाथ ।
जहाँ दुःख वहाँ देख तुम्हें,
मैं पकड़ूँगा जोरों के साथ ॥

सम्पादकीय सम्बोधन

# गाजीपुर और स्वामी विवेकानन्द

मेरे आत्मस्वरूप मित्रो,

वाराणसी जाने के क्रम में जब भी गाजीपुर स्टेशन पर मेरी ट्रेन रुकती है; मैं अपने भीतर एक विचित्र सिहरन, स्पन्दन और पुलक का अनुभव करने लगता हूँ। गाजीपुर की गंगा में नहायी हुई हवा आकर मुझे छूती है और मैं एक अतीत में खो जाता हूँ। और जब ट्रेन खुलने लगती है तो श्रद्धावनत हो मैं वहाँ की मिट्टी को प्रणाम कर एक प्रकार की धन्यता का अनुभव करता हूँ।

गाजीपुर। वाराणसी-छपरा रेल मार्ग पर वाराणसी से मात्र ७५ कि०मि० की दूरी पर स्थित उत्तरप्रदेश का एक छोटा सा नगर। किन्तु श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के भक्तों, अनुरागियों और जानकारों के लिए—एक पुण्यभूमि, एक धर्मधाम, एक तीर्थस्थल। इसके कुछ कारण हैं।

यही वह पुण्य भूमि है जहाँ विश्ववंद्य स्वामी विवेकानन्द ने परिव्राजक के रूप में प्रायः ढाई महीने तक निवास कर 'भगवान शुक की इस जन्म भूमि' को तीर्थता प्रदान की।

यही वह पावन नगर है जहाँ स्वामीजी ने प्रसिद्ध योगिराज पवहारी बाबा से योग की शिक्षा लेने को उनकी शिष्यता कर ग्रहण करने की इच्छा की थी, तथा उनकी कृपा भी प्राप्त की थी, "किन्तु अब तो मैं देखता हूँ 'उल्टा समझलि राम'—पहले मैं उनके द्वार का भिखारी था, पर अब वे ही मुझसे कुछ सीखना चाहते हैं! ऐसा लगता है कि ये सन्त अभी पूर्ण सिद्धि की अवस्था पर नहीं पहुँचे है ··। समुद्र पूर्ण होने पर कभी वेलाबद्ध (मर्यादित) नहीं रह सकता, यह निश्चित है।"[1]—लिखा था स्वामीजी ने।

यही वह पवित्र क्षेत्र है जहाँ से स्वामीजी ने अपने गुरु भाइयों (स्वामी अखण्डानन्द और स्वामी अभेदानन्द) एवं श्रीबलराम बोस, श्रीप्रमदा दास मित्र आदि को अपने छोटे बड़े १६ महत्वपूर्ण पत्र लिखकर न केवल अपने हृदय में उन दीनों चल रहे द्वन्द्वों एवं मनोवेदनाओं को व्यक्त किया था बल्कि तिब्बत, तिब्बतियों के तान्त्रिक अनुष्ठानों तथा बौद्ध धर्म एवं वैदिक धर्म की मूलभूत एकता का गवेषणात्मक प्रतिपादन भी किया था। (देखिए, स्वामी अखण्डानन्द को लिखित फरवरी १८९० का पत्र)।

यही वह स्थान है जहाँ से उन्होंने अपने हृदय को सागर की उदारता और उदात्तता से युक्त कर घोषणा की थी—"भगवान बुद्ध मेरे इष्टदेव हैं—मेरे ईश्वर हैं। उनका कोई ईश्वरवाद नहीं, वे स्वयं ईश्वर थे। इस पर मेरा पूर्ण विश्वास है। किन्तु, परमात्मा की अनन्त महिमा को सीमाबद्ध करने की किसी में शक्ति नहीं। ईश्वर में भी वह शक्ति नहीं कि वह अपने को सीमित कर सके और पुनः उन्होंने सिंह विक्रम के साथ आचार्य शंकर की प्रशंसा करते हुए उद्घोष किया था—"उपनिषदों के ऊपर बौद्ध धर्म पनपा है और उसके भी ऊपर है श्रीशंकराचार्य का दर्शन। यदि शंकराचार्य में कोई कमी है तो वह है बुद्ध के समान अद्भुत हृदय की। उनका केवल शुष्क ज्ञानवाद था। तन्त्रों के भय से, लोकभय से एक फोड़े को अच्छा करने के प्रयत्न में पूरा हाथ ही काट डाला।"[2]

पुनः यही वह वन्दनीय स्थान है जहाँ अपने आवास काल में प्रति रविवार को रायबहादुर

गगनचन्द्र राय के मकान में आयोजित एक छोटी-सी धर्मसभा में स्वामीजी राधाकृष्ण लीला सम्बन्धी गीत गाया करते थे जिस कारण गाजीपुर के लोग उन्हें बाबाजी कहकर पुकारते थे। उसी सभा में एक दिन स्वामीजी ने इस तथ्य पर गंभीर आलोक डाला था कि हिन्दू जाति का उद्देश्य क्या है और इसकी प्रकृत जीवनी-शक्ति कहाँ है। इसी संदर्भ में उन्होंने कहा था—"समाज पर अग्निमय अभिशापों की वर्षा कर तथा प्रत्येक आचार व्यवहार की कड़ी आलोचना द्वारा किसी प्रकार का सुधार संभव नहीं है। इसके लिए तो असीम प्रेम तथा अनन्त धैर्य की आवश्यकता है।...आध्यात्मिक नींव पर प्रतिष्ठित हिन्दू सभ्यता के प्रकृत रूप को देखने की दृष्टिशक्ति वे (समाज सुधारक) खो बैठे हैं। जिस दिन हम इस बात को भली भाँति समझते हुए विदेशी भाव युक्त, संस्कारों के पंजे से समाज की रक्षा के लिए उद्यत हो जायेंगे, उसी दिन हमारी वर्तमान जातीय समस्या का समाधान होगा।"[3]

यहीं, हाँ यहीं, आते समय ट्रेन में किसी मारवाड़ी ने उन पर अनेक व्यंग्य वाण छोड़े थे, उनके सामने प्रचंड गर्मी के समय स्वयं तो खूब हलुवा पूड़ी खायी और कुछ पानी पीकर बाकी को नीचे फेंक दिया किन्तु भूखे-प्यासे स्वामीजी को एक बूँद जल देने के बदले उन पर निकम्मेपन का आरोप करते हुए फब्वतियाँ कसी थीं। लेकिन गाजीपुर उतरने पर जब चिलचिलाती धूप में एक वृक्ष के नीचे स्वामीजी सोये थे तो वहीं के अनजाने एक हलुआई ने पूड़ी-मिठाई लाकर उन्हें भर पेट खिलाया, जल-पान कराया, सोने को विस्तर प्रदान किया और बताया कि श्रीरामचन्द्र ने सोते हुए से जगाकर उसे ऐसा करने का आदेश दिया था। यह सुन वह मारवाड़ी अति लज्जित हुआ था।

स्वामीजी ने अपने अवस्थान काल में यहाँ कई यूरोपीय सज्जनों से बातचीत कर उन्हें हिन्दू धर्म के तत्वों से परिचित कराया था। ऑफिग विभाग के रॉस साहब ने हिन्दू धर्म के कई तत्वों की उनसे जानकारी प्राप्त की थी तथा होली के सम्बन्ध में उनसे एक लेख मांगा था। स्वामीजी ने लेख लिख कर दे दिया। उनकी विद्वत्ता से प्रभावित हो रॉस साहब ने वहाँ के जिला जज पेलिङ्गटन साहब से उनका परिचय कराया था। स्वामीजी से हिन्दू धर्म की व्याख्या सुनकर जज साहब ने उन्हें इंगलैंड जाकर धर्म प्रचार करने का अनुरोध किया था। कदाचित गाजीपुर ही प्रथम स्थान है जहाँ स्वामीजी से किसी विदेशी ने अपने देश में जाकर धर्म प्रचार करने का आग्रह किया था। कर्नल रिवेट कार्नाक नामक अंग्रेज के साथ भी कई दिनों तक स्वामीजी ने वेदान्त विषयक चर्चा की थी। वस्तुतः स्वामीजी उन दिनों जिस आचार्य भाव से भावित एवं अत्युच्च आध्यात्मिक स्तर पर विराजमान थे उसका निदर्शन गाजीपुर में अत्यन्त भास्वर रूप में हुआ था।[4]

फिर हम देखते हैं कि काशीपुर में स्वामीजी के मन में आध्यात्मिक ज्ञान लाभ की जो पिपासा जगी थी वह गाजीपुर में उपयुक्त वातावरण पाकर हठात् पूरे वेग से पुनरुज्जीवित हो उठी और उसने सब कुछ भुलाकर उन्हें राजयोग के पथ पर आत्मानुसन्धान करने के लिए उत्प्रेरित-उत्साहित कर दिया।[5]

और सब से बढ़कर यही वह धन्य भूमि है जहाँ स्वामीजी के जीवन में एक अपूर्व घटना घटी थी जिसके द्वारा श्रीरामकृष्ण के साथ स्वामीजी का अलौकिक सम्बन्ध और अधिक स्पष्ट रूप से प्रकट हुआ था तथा स्वामीजी के गाजीपुर रहने का मूल प्रयोजन—अर्थात् पवहारी बाबा से साधन मार्ग का उपदेश लेना—निरर्थक सिद्ध हुआ था। यह घटना अत्यन्त मर्मस्पर्शी और गुरुत्व पूर्ण है। स्वामीजी ने पवहारी बाबा को राजयोग की शिक्षा देने तथा अपना ज्ञान-भंडार उनके समक्ष खोल देने का तीव्र आग्रह किया था। पर बाबाजी तैयार नहीं हुए। अंत में स्वामीजी ने सोचा शायद उनसे दीक्षा लेने

पर वे यह ज्ञान दे सकें। अतः स्वामीजी पवहारी बाबा से दीक्षा लेने को तैयार हो गये। एक दिन—

'गम्भीर रात्रि में स्वामीजी पवहारी बाबा की गुफा में जाने के लिए तैयार हुए। "श्रीरामकृष्ण या पवहारी बाबा ?"—यह प्रश्न मन में आते ही उनका उत्साह ठण्डा पड़ गया। विह्वल हृदय से, सन्देहपूर्ण चित्त से विवेकानन्द भूमि पर बैठ गये। श्रीरामकृष्ण की असीम कृपा, गम्भीर प्रेम, स्नेहयुक्त व्यवहार, एक-एक करके उनकी स्मृति में आने लगे और इससे उनका व्यथित चित्त आत्मधिक्कार से भर गया। एकाएक उनका अन्धकारमय कक्ष दिव्य आलोक से उद्भासित हो उठा। स्वामीजी ने अपने सजल नेत्रों को उठाकर देखा—दिव्यदर्शन—उनके जीवन के आदर्श दक्षिणेश्वर के वही अद्भुत देव-मानव उनके सामने खड़े हैं! उनके उज्ज्वल तथा विस्तृत नेत्रों में स्नेह, करुणा एवं व्यथापूर्ण भर्त्सना थी—विवेकानन्द अवाक् रह गये, एक प्रहर तक पत्थर की मूर्त्ति की तरह वे जमीन पर बैठे रहे। प्रातः काल हुआ। मन में संकल्प-विकल्प होने लगा कि भगवान् श्रीरामकृष्ण का वह दर्शन मस्तिष्क की दुर्बलता का ही फल तो नहीं था। निदान, अगली रात को वे फिर से पवहारी बाबा के पास आने के लिए उद्यत हुए। पर आज भी वही पहले की देखी हुई ज्योतिर्मयी मूर्ति उसी तरह उनके सामने खड़ी हो गयी !! एक दिन, दो दिन, तीन दिन, लगातार इक्कीस दिन इसी प्रकार व्यतीत होने पर अन्त में वे मर्मवेदना से भूमि पर लोटपोट होकर आर्त्त स्वर से बोल उठे, "नहीं प्रभो, मैं और किसी के पास नहीं जाऊँगा, हे रामकृष्ण! तुम ही मेरे एक मात्र आराध्य हो, मैं तुम्हारा ही दास हूँ। मेरी इस मानसिक दुर्बलता के अपराध को क्षमा करो प्रभो!"[6]

कुछ दिनों बाद इस घटना को लक्ष्य कर स्वामीजी ने इसी गाजीपुर में अपनी वह अतिप्रसिद्ध भावभीनी तलस्पर्शी लम्बी कविता की रचना की थी 'गाई गीत शुनाते तोमाय'—गाता हूँ गीत मैं तुम्हे ही सुनाने को—जो अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है। एक अंश देखें—

"बाल केलि करता हूँ तुम से मैं
और क्रोध करके देव
तुमसे किनारा कर जाना कभी चाहता हूँ
किन्तु निशा काल में
शय्या के शिरोभाग में
देखता हूँ तुमको मैं खड़े हुए,—
चुपचाप,—आँखें छलछलाई हुईं
हेरते हो मेरे तुम मुख की ओर।
उसी समय बदल जाता भाव मेरा
पैरों पड़ता हूँ, पर क्षमा नहीं माँगता
तुम नहीं करते हो रोष।
पुत्र हूँ तुम्हारा, कहो,
और कोई कैसे इस प्रगल्भता को
सहन कर सकता है ? प्रभु हो तुम मेरे
तुम प्राण सखा मेरे हो कभी देखता हूँ
तुम मैं हो, मैं तुम हूँ।
इसी कविता में उन्होंने कहा है—
दास हूँ तुम दोनों का
सशक्तिक चरणों में प्रणाम है तुम्हारे देव !
...गूँजता अनाहत नाद सुन्दर तुम्हारा वहाँ,
भक्ति पूर्वक सुनता यह दास
है तत्पर सदा ही
पूर्ण करने को तुम्हारा काम।"

यहीं, इसी गाजीपुर में श्रीरामकृष्ण की अद्वितीयता और अपूर्वता के सम्बन्ध में स्वामीजी गतसंदेह हुए और उनकी धारणा बद्धमूल हुई। उन्होंने ३ मार्च १८९० को प्रमदाबाबू को लिखा—"मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि श्रीरामकृष्ण की बराबरी का दूसरा कोई नहीं। वैसी अपूर्व सिद्धि, वैसी अपूर्व अकारण दया, जन्म मरण से जकड़े हुए जीव के लिये वैसी प्रगाढ़ सहानुभूति इस संसार में और कहाँ ? या तो वे अपने कथनानुसार

अवतार हैं अथवा वेदान्त दर्शन में जिसे नित्यसिद्ध महापुरुष 'लोकहिताय मुक्तोऽपि शरीरग्रहणकारी' कहा गया है, वे हैं, निश्चित निश्चित इति मे मतिः।··· अपने जीवन काल में उन्होंने मेरी किसी भी प्रार्थना को नहीं ठुकराया, मेरे लाखों अपराध क्षमा किये। मेरे माता-पिता में भी मेरे लिए इतना प्रेम न था। इसमें कोई कविजन सुलभ अतिशयोक्ति नहीं है। यह एक नितान्त सत्य है जिसे उनका प्रत्येक शिष्य जानता है।"[7]

और भी कई महत्वपूर्ण घटनाएँ गाजीपुर में स्वामीजी के अवस्थान काल में घटीं।

स्वामीजी गाजीपुर को बहुत प्यार करते थे। वहाँ की जलवायु उन्हें बहुत पसन्द थी। "बैद्यनाथ का जल अत्तन्त खराब है, हजम नहीं होता। इलाहाबाद अत्यन्त घनी बस्ती है—वाराणसी में जब तक रहा हर समय ज्वर बना रहा, वहाँ इतना 'मलेरिया' है। गाजीपुर में खासकर मैं जहाँ रहता हूँ, वहाँ की जलवायु स्वास्थ्य के लिए अत्यन्त लाभदायक है।"[8] यहाँ के लोगों की सज्जनता के वे प्रशंसक थे। किन्तु पाश्चात्य सभ्यता के प्रति उनकी आसक्ति के वे विरोधी थे। उन्होंने गाजीपुर आते ही जो पहला पत्र २४ जनवरी, १८९० को लिखा उस में अपनी मनोवेदना व्यक्त करते हुए कहा—"यहाँ और सब ठीक है, सभी लोग सज्जन हैं, पर उनमें बहुत अधिक पाश्चात्यपन आ गया है।···कैसी रद्दी सभ्यता विदेशी यहाँ लाये हैं। उन्होंने जड़वाद का कैसा मृगजाल उत्पन्न किया है!···शोक है कि भाग्य के फेर से भगवान शुक का इस जन्मभूमि में त्याग को पागलपन और पाप समझा जाता है।"

स्वामीजी २२ जनवरी १८९० से अप्रैल के प्रथम सप्ताह तक गाजीपुर में ठहरे—कुछ दिनों तक अपने एक बाल सखा बाबू सतीशचन्द्र मुखर्जी के गोरा बाजार स्थित घर पर एवं कुछ दिनों तक गगन बाबू के बगीचे में स्थित बंगले में। इस काल के प्रायः ९६ वर्ष हो गये हैं।

जिस गाजीपुर में दीर्घ अवधि तक ठहर कर तथा अपने कई रूपों, कई भंगिमाओं, कई मनोभावों और कई दृष्टियों का परिचय देकर स्वामीजी ने गाजीपुर को धन्यता प्रदान की, क्या वहाँ के निवासियों का यह पुनीत कर्त्तव्य नहीं होता कि वे स्वामीजी की स्मृति की रक्षा के लिए उस स्थान को सुरक्षित रखने का प्रयत्न करें तथा वहाँ एक आश्रम की स्थापना कर स्वामीजी के भावादर्शों को साकार रूप देने की एक विनम्र चेष्टा करें? यह वर्ष स्वामीजी के १२५वें जन्मोत्सव का वर्ष है। मेरी हार्दिक आकांक्षा है कि गाजीपुर के सुधी नागरिक, विशेषकर युवजन आगे आकर इस दायित्व को अपने कंधे पर उठायें और स्वामीजी की ऐतिहासिक स्मृति की धरोहर को देश की अमर विरासत के रूप में संभाल कर रखें। गाजीपुर के नागरिको—'उठो जागो, और लक्ष्य तक पहुँचे बिना विश्राम मत लो।'—स्वामीजी की वाणी में आपको मेरा यह विनम्र आह्वान है।

आप में यह चेतना, यह शक्ति और यह स्फुरण उत्पन्न हो कि आप गाजीपुर में एक 'विवेकानन्द स्मृति मंदिर' की स्थापना उसी स्थल पर कर सकें जहाँ स्वामीजी ने निवासकर उस स्थान को तीर्थत्व प्रदान किया था। श्रीरामकृष्ण, श्रीमाँ और स्वामीजी से यह मेरी आंतरिक तथा अकपट प्रार्थना है। जय श्रीरामकृष्ण! जय स्वामीजी!!

---

१ पत्रावली : पृष्ठ ४३
२. पत्रावली—पृ०३८
३. विवेकानन्द चरित सत्येन्द्र नाथ मजूमदार पृ० १५९-६०
४. युगनायक विवेकानन्द (बंगला) : पृ० १७५-७६
५. देखिए वही : पृ० १७८
६. विवेकानन्द चरित—पृ० १६०-६१
७. पत्रावली : ,, ,, पृ० ४४-४५
८. वही ,, ,, पृ० २५

# मेरे जीवन में श्रीरामकृष्ण

—श्रीमती कैरोलिन बी केन्नी

[श्रीमती कैरोलिन बी केन्नी अमेरिका निवासिनी भद्र महिला हैं। श्रीरामकृष्ण ने किस भाँति इनके और इनके परिवार के समस्त सदस्यों के जीवन को रूपान्तरित कर इन्हें शांति और धन्यता प्रदान की, इसका रोचक वर्णन श्रीमती केन्नी ने इस लेख में किया है। अंग्रेजी में लिखा मूल लेख रामकृष्ण मठ, मद्रास द्वारा प्रकाशित मासिक पत्रिका 'वेदान्त केसरी' के फरवरी १९८८ अंक में प्रकाशित हुआ था। उसी लेख का डॉ० केदार नाथ लाभ द्वारा किया गया हिन्दी रूपान्तर यहाँ पाठकों के हित-साधनार्थ साभार प्रकाशित है।---सं०]

ज्यों ही मैं बीच गलियारे होकर टाइल बिछी फर्श पर अपनी कुर्सी की ओर चलने लगी, श्रीरामकृष्ण के आदमकद चित्र के सामने-सामने मैं हो गयी। अपने हर बढ़ते डेग के साथ, ज्यों-ज्यों मैं उनके निकट से निकटतर होती गयी, मुझे तीव्रता से ऐसा लगने लगा कि मैं लौट जाऊँ। मैंने सोचा, 'वह कौन व्यक्ति है जो इतना अनोखा और भिन्न लगता है? इस स्थान के प्रति मेरा अविश्वास ठीक ही है। इस कमरे में फिर कभी मैं नहीं आऊँगी।' किन्तु; तब मैं यह बहुत कम जानती थी कि इन श्रीरामकृष्ण ने पहले ही अपने जाल में मुझे फाँस लिया है, और मेरा प्रथम प्रतिरोध समाप्त हो जायगा। धीरे-धीरे, अनवरत रूप से स्वेच्छापूर्वक मैं उनके चित्र को निहारने तथा उन्हें अपने मन में अंकित करने में भी समर्थ हुई। क्रमशः मुझे लगा कि मैं उनकी हूँ, तथा मैं उन्हें बहुत-बहुत प्यार करती हूँ। किन्तु, मैं अपनी कहानी सुनाती हूँ।

मैं एक अमरीकी हूँ। मैं एक नारी हूँ और मैं एक माँ हूँ। मेरा जन्म एक ठेठ मध्यवर्गीय परिवार में हुआ था जिसमें ऐसी कोई विशेषता नहीं थी जो इसे किसी दूसरे ठेठ मध्यवर्गीय परिवार से अलग सिद्ध करती हो। नीतिपरक कार्य करने तथा नैतिक व्यक्ति बनने की आवश्यकता में दृढ़ता से विश्वास करती हुई मैं बड़ी हुई। जहाँ तक धर्म का प्रश्न है, एक प्रोटेस्टैन्ट (और उसे सर्वोत्तम माना जाता था) के रूप में मैं सँवारी गयी और प्रति सप्ताह रविवासरीय स्कूल और चर्च गयी। मैंने चर्च के उपदेशों में कभी भी अधिक विवेक या समझदारी नहीं पायी। मेरे प्रश्न सर्वदा अनुत्तरित रहे तथा मेरी उम्र के साथ मेरी शंकाएँ बढ़ती गयीं। किन्तु, चूँकि अच्छे लोग बराबर गिरिजाघर जाते थे, इसलिए मैं भी जाती रही। जब मेरा विवाह हो गया और मुझे चार बच्चे हुए, तब भी हम सब चर्च जाते रहे।

कुछ ही दिनों के बाद मैं कुछ और की, ऐसे कुछ की, जो मेरे द्वारा अनुभव की गयी आध्यात्मिक रिक्तता को भर सके, टीसती हुई आवश्यकता महसूस करने लगी। नेकनीयत पुरोहितों ने विश्वास और प्रार्थना और दूसरों की भलाई करने की बातें बतायी थीं। किन्तु वे काफी नहीं लगीं। मैंने अपने सहज ज्ञान से यह अनुभव किया कि जीवन का अर्थ कुछ अधिक अवश्य होगा, कि जीवन के अर्थ की कुछ गंभीर व्याख्या अवश्य होगी। मैंने सोचा कि ईश्वर तक पहुँचने के लिए व्यक्तिगत रूप से कोई मार्ग अवश्य होगा। किन्तु मैं उसे पा न सकी।

मैं चर्च से निराश, कटु और यहाँ तक कि क्रुद्ध भी हो गयी। तब एक दिन किताबों की एक दुकान में मुझे एक छोटी पुस्तिका चुनने का सुयोग मिला जिस पुस्तिका में कर्म तथा पुनर्जन्म का अर्थ संक्षेप में समझाया गया था। ज्यों ही मैंने उसे पढ़ा, मैं अभिज्ञान से आप्लावित हो गयी। मैंने अपने आप से कहा, 'सचमुच, यह सही है!' मैं ऐसे चर्च की खोज करने लगी जो इन प्रणालियों पर विश्वास करता हो और मैंने नव चिन्तन समुदायों, विशेषकर युनिटी को ढूँढ़ लिया। किन्तु उनके द्वारा भौतिक उपलब्धि पर जोर दिये जाने के कारण मैं व्यथित थी, इसलिए मैं पुनः हतोत्साह हो गयी। चूँकि मैं पूर्णकालिक कार्य करने तथा अपने बच्चों को योग्य बनाने में व्यस्त थी, इसलिए मैं आगे नहीं ढूँढ़ पायी और वर्ष के वर्ष बीत गये।

जिस प्रकार मेरे बचपन का परिवार विशेषता रहित था, उसी भाँति विवाह के बाद का भी मेरा परिवार था। मेरे पति और मैं एक दूसरे को प्यार करते थे, और हमलोग अपने बच्चों को प्यार करते थे। हमलोग कठिन परिश्रम से कार्य करते थे तथा अच्छे और बुरे समयों में सहभागिता करते हुए आपस में एक साथ आमोद-प्रमोद करते थे। लेकिन हमलोग अपनी जानकारी के किसी दूसरे परिवार से भिन्न नहीं थे। ऐसा कुछ बाहरी नहीं था जो हमलोगों को अलग करता। कम से कम तब तक नहीं जब कि हमारा बड़ा बेटा, जो उन दिनों कॉलेज में पढ़ता था, हमारे पास आया और कहा कि वह वेदान्त सोसाइटी की सभाओं में जाता रहा है और भारत के रामकृष्ण संघ के संन्यास के नियमों के अनुसार अपना जीवन यापन करने की सोच रहा है। उन दिनों भारतीय संन्यासी के सम्बन्ध में मेरी धारणा भीख के लिए अपनी पतली हथेली फैलाये कांटों की सेज पर चलते हुए एक कृशकाय भिखारी की थी। यह कैसे हो गया? मेरा हृदय टूट गया था। उस पर लगी मेरी सारी आशाएँ चूर-चूर हो गयी थीं। यह सोचकर कि मैंने अपना बेटा खो दिया है, दुःख से टूक-टूक हो मैं बिखर गयी थी। मैंने सहायता ढूँढ़ी किन्तु मदद करने वाला कोई न मिला। मैं अपने जीवन के निम्नतम, बिल्कुल अकेलापन के विन्दु पर पहुँच गयी थी। अतः निराशा में मैंने ईश्वर से याचना की—'यदि तुम हो, तो कुछ करो!' और उसने किया।

मेरा दुःख दूर हुआ। धीरे-धीरे मैं अपने को सँभालने में समर्थ हुई। केवल यह जानने के लिए कि मेरे बेटे को किस बात ने आकर्षित किया था, मैंने इस वेदान्त भावान्दोलन की जाँच-पड़ताल करने का निश्चय किया। इसी से उस अपराह्न को कैलिफोर्निया के ट्रैबुको कैनियन में स्थित रामकृष्ण मठ की सभा में मैं उपस्थित हुई। वहीं मैंने पहले पहल श्रीरामकृष्ण के चित्र को देखा।

अपनी प्रारंभिक प्रतिक्रिया के बावजूद, उस स्थान और चित्र के सम्बन्ध में अपने सतही विचारों के बावजूद, मैंने जिन विचारों को सुना उनसे मुग्ध हो गयी। मैं गहरे भावनात्मक स्तर पर प्रज्वलित हो उठी थी। कुछ था जिसने मुझे कसकर पकड़ लिया था। मैं उद्दीपित और आनन्दित हो गयी थी। उस अपराह्न से मेरा जीवन बदल गया था। प्रश्न करने और यहाँ तक कि चिन्तन-मनन करने के लिए भी मैंने वेदान्त साहित्य का अध्ययन करना शुरू किया। थोड़ा-थोड़ाकर मैं अनुभव करने लगी कि वेदान्त मेरे सभी प्रश्नों का ऐसा उत्तर दे रहा है जिसे मैं स्वीकार कर सकती हूँ। मैं बौद्धिक रूप से उद्दीपित हो गयी थी और मेरे विचार एक परिप्रेक्ष्य में गिरते जा रहे थे। इसके अतिरिक्त, वेदान्त एक गहरे स्तर पर मुझे पूर्णता प्रदान कर रहा था। मुझे लगा कि मैं अपने आध्यात्मिक परिवार में सदा के लिए अपने घर

आ गयी हूँ, कि मैं सचमुच श्रीरामकृष्ण की हूँ और उनके निकटतर होती जा रही हूँ।

पीछे मुड़कर देखने पर मैं ठीक ही स्पष्ट रूप से अनुभव करती हूँ कि आनेवाली सभी कठिन घड़ियों में श्रीरामकृष्ण ने किस प्रकार मुझे सँभाले रखा। जब मेरी बड़ी बेटी ने निर्णय लिया कि वह भी संन्यास का जीवन व्यतीत करेगी और वह कैलिफोर्निया के सान्ता बारबरा स्थित सारदा कान्वेन्ट में सम्मिलित हो गयी, तब मुझे उस पर प्रसन्नता हुई। अर्थात् मेरे जीवन के एक हिस्से ने इसे स्वीकार किया। किन्तु, मेरे दूसरे हिस्से ने तीव्र आवेग से प्रतिक्रिया व्यक्त की। एक बार फिर मैं अपनी खोयी हुई संतान के लिए संतप्त हुई। किन्तु वह बड़ी अपेक्षाकृत अधिक सरल थी, क्योंकि मैं जानती थी कि श्रीरामकृष्ण मेरे साथ हैं और मैं उनकी ओर मुड़ सकती हूँ। मेरा संताप शीघ्र ही मिट गया।

वेदान्त में मेरे जीवन के प्रवेश के दिनों से ही मेरे पति ने गम्भीर आपत्तियाँ प्रकट की थीं। उनके लिए उस धर्म को स्वीकारना कठिन था जिसने उनके पुत्र, उनकी पुत्री और उनकी पत्नी के मन और हृदय को इतना अधिक लील लिया था। वे बाहर से सहिष्णु थे, किन्तु सहानुभूतिपूर्ण नहीं थे। सब से बढ़कर, वे इस बात पर अटल थे कि वेदान्त उन्हें 'फँसा' नहीं सकता, वे इसमें सम्मिलित होने वाले आखिरी व्यक्ति होंगे। वे आधे सही थे। हमलोगों का छोटा बेटा और बेटी उनसे पहले ही वेदान्त में सम्मिलित हो गये। वेदान्त को स्वीकार करने वाले वे परिवार के आखिरी व्यक्ति थे, किन्तु वेदान्त ने उन्हें 'जकड़ा' अवश्य और उनको भी दीक्षा दी गयी। अपनी दीक्षा के दिन वे मंदिर से मुख पर प्रसन्नता की ऐसी चमक और दीप्ति के साथ बाहर निकले जैसी मैंने पहले कभी नहीं देखी थी।

उनके जीवन के अंतिम वर्ष कठिन थे क्योंकि अनेक जटिलताओं भरे रोग से वे गम्भीर रूप से ग्रस्त थे। उनके कष्ट का अंत उनकी मृत्यु के साथ ही हुआ। उनके शरीर-त्यागने के समय मैं उनके निकट थी और मैं जानती हूँ कि श्रीरामकृष्ण भी उनके निकट थे। निश्चय ही श्रीरामकृष्ण ने उन घड़ियों में मुझे सँभाले और ऊपर उठाये रखा।

अब मैं अकेली रहती हूँ। अपने अस्तित्व में स्थित विभिन्न स्तरों के सम्बन्ध में मैं तेजी से अवगत होती जा रही हूँ। सोचने, कर्म करने और अनुभव करने का एक ऊपरी तल है जिसमें मैं अपना बहुत अधिक समय व्यतीत करती हूँ। किन्तु एक वह गहरा तल भी है जहाँ श्रीरामकृष्ण स्थिर भाव से मेरी प्रतीक्षा करते रहते हैं। मैं अकेली नहीं हूँ, क्योंकि मैं जानती हूँ कि वे (श्रीरामकृष्ण) मेरे अस्तित्व के गहरे भीतर, 'साथपन' का मुझे अहसास कराते हुए, अब भी मेरे साथ हैं।

श्रीरामकृष्ण से हुई मेरी पहली मुलाकात के बीस वर्ष हो गये हैं। यह सोचकर कि उन्होंने (श्रीरामकृष्ण ने) केवल मेरे लिए नहीं, बल्कि हम सब के लिए, क्या किया है, मैं (श्रद्धायुक्त) विस्मित और चकित हूँ। उन्होंने मेरे साधारण परिवार को असाधारण बना दिया है। मेरे दो बच्चे संन्यासी हो गये हैं। मेरे पति गृही भक्त थे। मेरे दूसरे दो बच्चे और एक पुत्र वधू गहरे भक्त हैं। एक माँ और पत्नी इससे अधिक क्या चाह सकती है ?

अब जब मैं श्रीरामकृष्ण के चित्र को निहारती हूँ, तब मैं प्रेमपूर्वक उनके सम्मुख झुक जाती हूँ। मैं उनकी कृपा के लिए प्रार्थना करती हूँ ताकि (उनके प्रति) मेरा प्रेम गहरा और तीव्र हो सके, और मैं उनके अत्यधिक निकट होती जाऊँ जब तक कि मैं उन्हें सदा के लिए पा न लूँ !

जय श्रीरामकृष्ण !

# माताओं और बहनों के लिए दो शब्द

स्वामी हर्षानन्द
अध्यक्ष, रामकृष्ण मठ, इलाहाबाद

समाज का केन्द्र है परिवार और परिवार का केन्द्र है स्त्री। गृहिणी के बिना गृह गृह नहीं रहता, वह दारुण वन से भी भयानक हो जाता है। यह तो प्राचीन भारतीयों का मत है। सनातन हिन्दू-धर्म ने स्त्रियों के लिए जिस आदर्श को हमारे सामने रखा है, वह गृहिणीत्व रूपी मूलभूत तत्व पर आधारित है। इस आधुनिक काल में यह स्थिति कुछ शिथिल हुई है। यह सच है कि अधिकांश भारतीय नारियों ने अपनी प्राचीन परम्पराओं का परित्याग नहीं किया है, अपितु इसके अनेकांश को पालित रखे हुए हैं। यह भी सत्य है कि बड़े शहरों को छोड़कर अन्य स्थानों में स्त्रियाँ अभी आधुनिकता के रंग में नहीं रंगी हैं। तो भी हम यह स्पष्ट रूप से देख सकते हैं कि आधुनिकता का आकर्षण धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा है। उच्च शिक्षा के अनेक सुअवसर, अधिकार और सुविधाओं का ज्ञान, वैषयिक सुखों का आकर्षण, नारी-जीवन सुधारने की महत्वाकांक्षा, राजनैतिक और सामाजिक जीवन में दिखाये हुए नये तत्व, आर्थिक समस्याओं का दबाव इत्यादि नाना कारणों से, स्त्रियों के जीवन में प्राचीन काल से जो एक सन्तुलन था वह आज विचलित हो रहा है। ज्ञान के कई क्षेत्रों में, जिनमें पहले उनका प्रवेश नहीं था, प्रवेश पाने के कारण जीवन को कई समस्याओं के प्रति महिलाओं का दृष्टिकोण भी परिवर्तित हो रहा है एवं उनके जीवन का ढंग भी बदल रहा है। घर की चार-दीवारी के बन्धन को पार कर बाहर आकर समाज में अपनी प्रतिभा को व्यक्त करने का उत्सुक मनोभाव भी दिखाई पड़ रहा है। यह बहुत खुशी की बात है कि जिन महिलाओं ने आजादी के लिए अंग्रेजी साम्राज्य के विरुद्ध पुरुषों के समान संघर्ष किया था, वे आजादी के पश्चात मातृभूमि के उद्धार के लिए बहुत उत्साह से काम कर रही हैं। घर से बाहर निकल कर पुरुषों के साथ समान रूप से व्यवहार करने का प्रयत्न कर रही हैं। इसलिए स्त्री-पुरुष के मध्य कर्तव्यों का जो बटवारा था, वह आजकल अदृश्य होता जा रहा है। भव्य-भविष्यत के बड़े आदर्श को दृष्टि में रख कर महिलाएँ व्यावहारिक जीवन के सभी क्षेत्रों में परिश्रम करके अपनी शक्ति एवं प्रतिभा का प्रदर्शन कर रही हैं। हाकी-टेनिस इत्यादि खेलों में या पर्वतारोहण, तैराकी में अथवा कारखानों प्रयोगशालाओं में या विश्वविद्यालयों में या सरकारी काम-काजों में—जन जीवन के सभी क्षेत्रों में उनका व्यापक असर पड़ा है।

इसमें कोई दोष नहीं। यह सब अच्छा है और इनके लिए हम सबको गौरवान्वित होना चाहिए। बुद्धि-शक्ति, आत्म-शक्ति की दृष्टि से महिलाएँ पुरुषों से किसी भी प्रकार कम नहीं हैं। इसलिए यदि वे घर के अन्दर की अपेक्षा घर के बाहर ही ज्यादा उपयुक्त होती हैं, तो वह भी स्वागत योग्य है। गार्गी, मैत्रेयी, सुलभा आदि प्राचीन नारियों का दृष्टान्त भी हमारे समक्ष है ही। लेकिन जब महिलाएँ अपने भविष्य के विषय में कोई विशेष निर्णय लेती हैं, तब पुरुषों से समान स्वातंत्र्य की इच्छा के साथ अपनी प्रकृति के अनुसार उच्च लक्ष्य और उसकी प्राप्ति में होने वाले कष्ट को भी मन

में रखना चाहिए। जीवन का लक्ष्य वैषयिक सुख हो या आध्यात्मिक आनन्द दोनों, पक्षों में स्त्री-पुरुष का स्वातंत्र्य समान होना चाहिए। स्त्री पुरुष के समानता भाव और समान अवसर के कारण आधुनिक काल में महिलाओं ने जीवन के सभी प्रमुख क्षेत्रों में प्रगति की है। इतना ही नहीं, कई बार धनार्जन करके वे परिवार को सहारा भी दे रही हैं, क्योंकि इस यांत्रिक नागरिकता के कारण अनेक परिवारों में आर्थिक संकट बढ़ रहा है।

यहाँ तक तो सब ठीक है। लेकिन यह सब हम क्यों कर रहे हैं? हमारा असल लक्ष्य क्या है? किसको पाने के लिए हम इस तरह आगे बढ़ रहे हैं? पशु की तरह क्या केवल शारीरिक सुख भोग ही हमारा लक्ष्य है या उससे ऊँचा कोई और लक्ष्य है? हमारी माताओं और बहनों को कुछ सावधानी से इस पर विचार करना चाहिए।

पशु के समान वैषयिक या इन्द्रिय-सुख को बहुमूल्य मानना मन की अधम प्रवृत्ति का मुख्य लक्षण है। आज महिलाएँ स्वेच्छा से किसी भी कार्य को कर सकती हैं। शिक्षा, चिकित्सा, उपचर्या, विज्ञान, कानून आदि समाज के अनेक क्षेत्रों में वे प्रतिष्ठित हैं। लेकिन जब तक बिना एक उच्च आदर्श के, वे केवल गृह-जीवन की ऊब मिटाने के लिए या धनार्जन से स्वप्रतिष्ठा के लिए या पुरुषों से स्पर्धा करने के लिए यह सब करती हैं, तब तक उनके सारे प्रयत्नों का अन्त व्यर्थता में हो सकता है। कारण यह है कि वह मनोधर्म, जिससे अपने स्वार्थ या अहंकार की वृद्धि के लिए गृह-जीवन की बलि देकर वे बाह्य प्रपंच में कूदती हैं, आखिर में समाज के लिए कुठार प्राय हो जाता है। इन विषयों में पाश्चात्य महिलाओं का अनुकरण करना सर्वथा अनुचित है। केवल विलासी-जीवन से या विलासी प्रवृत्ति पर एक महान व्यक्तित्व या महान राष्ट्र का निर्माण असाध्य है।

केवल प्राचीन काल में ही क्यों, अभी पचास वर्ष पूर्व तक स्त्रियाँ घर के कार्यों को क्रोध अथवा ऊब से नहीं वरन् श्रद्धा से इसे अपना पवित्र कर्तव्य मानते हुए करती थीं। आज जब आधुनिक महिलाएँ घर से बाहर अन्य क्षेत्रों में कार्य कर रही हैं, क्या वहाँ भी उनकी दृष्टि यही है? यह तो विवादग्रस्त विषय है। यदि कार्य के पीछे यह उदार मनोभाव ही नहीं है, तो 'शिक्षा', 'प्रगति' 'समान अवसर' इत्यादि बातों का कुछ भी अर्थ नहीं। जब तक हममें हृदय की परिशुद्धि, संयम, निःस्वार्थता, इच्छा-शक्ति आदि सद्गुणों का अभाव रहेगा तब तक ग्रंथ, पांडित्य, कीर्ति, अनेक संस्थाओं की सदस्यता — सभी निष्प्रयोजक होंगे। कारण यह है कि हमारा व्यक्तित्व हमारे शील पर आधारित है। यह सत्य स्त्री पुरुष दोनों के लिए समान है।

सीता, सावित्री, दमयन्ती, अनुसूया—ये हैं प्राचीन भारत से हमारे समाज के सामने रखा हुआ आदर्श। इन महीयसी महिलाओं ने अपने जीवन में अतिशय कष्ट और दुःख भोगने के बावजूद अपने शील की रक्षा की थी। सच्ची शिक्षा का मुख्य लक्ष्य है शील-निर्माण। इस दृष्टि से यदि देखा जाय तो ये सब बहुत सुशिक्षित थीं। आज की शिक्षित स्त्रियों को इस दृष्टिकोण से आत्म-परीक्षण करना चाहिए कि वे सही रूप में शिक्षित हैं या नहीं।

भारतीय संस्कृति के अनुसार आदर्श नारी सर्वप्रथम आदर्श माता है; बाद में है आदर्श पत्नी। स्वार्थरहित मनोभाव और शांत चित्त से सास-ससुर, पति और बच्चों की सेवा करना उसका सहज रहा है। प्राचीन भारतीय नारियों में ऐसे मनोभाव के रहने के कारण ही भारतीय समाज शताब्दियों से अडिग रूप से रक्षित हुआ है। लेकिन कालक्रम से ऐसी परिस्थितियाँ भी बनीं जिनसे गृह कारागार के समान हो गया और इन्हें बौद्धिक विकास के लिए पर्याप्त अवसर भी नहीं मिले।

यह एक बड़ा प्रमाद है, जिसे हमें स्वीकार करना होगा। आजादी के बाद इसे सुधारने के प्रयत्न हो रहे हैं। लेकिन कूड़ा-करकट झाड़कर साफ करते समय उसके साथ हीरे को भी फेंक देना जैसे अविवेकपूर्ण कार्य है, वैसे ही बौद्धिक शिक्षा के द्वारा अज्ञान को मिटाने में, उसके साथ श्रद्धा, भक्ति, शील आदि सद्गुणों का नाश करना भी बिल्कुल अविवेक है। इसलिए प्रचलित शिक्षा पद्धति में लौकिक विद्या के साथ साथ इन्द्रिय-निग्रह, स्वार्थ-त्याग, विश्वप्रेम आदि सद्गुणों को भी स्थान देना चाहिए।

लज्जा स्त्रियों में सहज रूप से रहने वाला और आवश्यक एक उत्तम गुण है। सुप्रसिद्ध 'देवी माहात्म्य' ग्रंथ में कहा गया है कि "जो देवी सर्वप्राणियों में लज्जा रूप से रहती हैं उनको नमस्कार।" अर्थात लज्जा एक दैवी गुण है। अत: स्त्रियाँ यदि सभी प्रकार से पुरुष-जैसा बनने की इच्छा करती हैं तो वह स्वधर्मत्याग और पर-धर्म स्वीकार है, बिल्कुल आत्महत्या के समान है। सुप्रसिद्ध नोबल पुरस्कार विजेता विज्ञानी डा० अलेक्सिस कारेल ने इस विषय में जो कुछ कहा है, उसका स्मरण करना यहाँ बहुत उचित है: "स्त्री पुरुष के बीच जो भेद है, वह उनके शरीर की जीवाणु-रचना पर और तदन्तर्गत रासायनिक द्रव्यों पर आधारित है। इस मूलभूत सत्य के अज्ञान के कारण ही कुछ लोग कह रहे हैं कि स्त्री और पुरुष दोनों को समान शिक्षा, समान काम-काज और समान जिम्मेदारी देनी चाहिए। वास्तव में स्त्री पुरुष से अत्यन्त भिन्न है। खगोलशास्त्र के नियमों की तरह मानव शरीर शास्त्र के नियम भी अनुल्लंघनीय हैं। केवल अपनी इच्छा अथवा अनिच्छा के अनुसार इनको नहीं बदला जा सकता। स्त्रियों को अपने सहज स्वभाव के अनुसार ही अपनी शक्ति और प्रतिभा को बढ़ाना चाहिए, पुरुषों के अनुकरण पर नहीं। हमारे समाज की नागरिकता और संस्कृति की प्रगति में उनकी पात्रता पुरुषों से बहुत अधिक है। लड़के और लड़कियों को दैहिक हो या बौद्धिक एक तरह की शिक्षा नहीं देनी चाहिए। जो शिक्षा दी जाय, वह इन दोनों के दैहिक और मानसिक वैशिष्ट्य के अनुसार ही हो। याद रखना चाहिए कि स्त्री-पुरुष में जो अन्तर और वैशिष्ट्य हैं, वे परिवर्तनशील नहीं हैं।"

अन्त में हम इस निर्णय पर पहुँचते हैं कि घर और परिवार ही स्त्रियों का मुख्य या प्रधान क्षेत्र है। वहाँ वे ही केन्द्रविन्दु हैं, केन्द्र शक्ति हैं। ऋग्वेद में एक बहुत सुन्दर मंत्र है (म० १०, सू. ७५, मंत्र ४६)! विवाह के पश्चात् कन्या-वधू अपने माता-पिता के घर से पतिगृह जाने के लिए तैयार होकर खड़ी है। माता-पिता आशीर्वाद दे रहे हैं—"सम्राज्ञी श्वशुरे भव। सम्राज्ञी श्वश्रुवां भव। ननांदरी सम्राज्ञी भव। सम्राज्ञी अधिदेवृषु।" इसका अर्थ यह है कि ससुराल में ससुर, सास, ननद, देवर इन सबके लिए रानी जैसी होओ। उसी समय उसका पति भी उससे कहता है: "मूर्धानं पत्युरारोहः प्रजया च विराट भव।" अर्थात् अपने पति का शिरोरत्न होओ, संतान द्वारा विराट होओ।

परिवार में, घर में स्त्री का मुख्य रूप पत्नी और माता का है। उसकी कीर्त्ति इस पर आधारित है कि वह अपने इन पात्रों को किस तरह निभाती है। अपनी प्रतिभा प्रदर्शित करने के लिए भी ये उत्तम क्षेत्र हैं। पुरुष तो धनार्जन के लिए सारा दिन परिश्रम करता है। इसलिए उसकी भलाई इस पर निर्भर है कि उसकी पत्नी उसके गृहकृत्य को कैसे परिचालित करती है। गृह ही नैतिक और आध्यात्मिक तत्वों का प्रधान आश्रय है। गृहिणी ही उनकी पोषिका है। इसीलिए हमारे धर्म-ग्रंथों में उसे 'सहधर्मिणी' नाम दिया गया है। गृह क्षेत्र में गृहिणी के जो कर्तव्य है, उन्हें करने

में पुरुष स्त्री की तरह समर्थ नहीं है। बच्चों का पालन-पोषण तो स्त्री का विशेष हक है। डा० राधाकृष्णन कहते हैं—'जब तक बच्चे आसमान से नहीं टपकते, अपितु माता के गर्भ से ही पैदा होते हैं, तब तक उनके प्रति स्त्रियों का कर्तव्य अवश्य रहता है। दूसरी पशु-सन्तानों की तरह मानव सन्तान के भी जन्म-काल में अत्यंत कमजोर और असहाय होने के कारण माता द्वारा उसका पालन-पोषण अत्यावश्यक है।"

अपने घर में गृह कार्यों की जो जिम्मेदारी स्वयं वहन करनी चाहिए, उनके प्रति आधुनिक महिलाओं का विशेष ध्यान नहीं है। 'दाई, स्कूल, छात्रावास, अस्पताल हैं ही। अतः हम क्यों वृथा परिश्रम करें।'—ऐसी मनोवृत्ति भी कभी-कभी देखी जाती है। लेकिन इस बात को याद रखना चाहिए कि माता के स्नेह और सेवा का बच्चों पर जो अद्भुत परिणाम होता है, वह दाई आदि दूसरे लोगों की सेवा से कभी भी नहीं हो सकता। हमारे देश के इतिहास में जितने भी महापुरुष हुए हैं उनमें प्रायः सभी पर अपनी माता की स्नेह-विश्वास पूर्ण सेवा का बहुत प्रभाव पड़ा था। माता के प्रेम और सेवा के बिना वे महान बन पाते या नहीं—इसमें सन्देह है। इसी से तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है—"मातृदेवो भव।" भारतीय संस्कृति की अक्षुण्णता का मुख्य कारण हमारी माताएँ ही हैं।

यह कहने का अर्थ यह नहीं है कि स्त्रियाँ पर्दा प्रथा को पुनः अपनाएँ। यह तो अन्यायपूर्ण और असाध्य है। किन्तु बिना सोचे-विचारे सभी क्षेत्रों में पुरुषों से प्रतिस्पर्धा करने से होने वाली हानियों को दिखाना ही हमारा एक मात्र उद्देश्य है। क्योंकि यदि परिवार टूट जाएगा तो हमारी संस्कृति भी नष्ट हो जाएगी : इन समस्याओं के विषय में इन्हें खूब विचार करना चाहिए। जो भी परिहार वे खोजें वह उनकी प्रगति के विरुद्ध न हो। किन्तु अपनी विद्या, अपनी स्वाधीनता के साथ-साथ समाज और राष्ट्र का हित भी साधित होना चाहिए। यह दायित्व उनका है।

परिवार की आर्थिक आवश्यकताओं के कारण आज महिलाओं को भी नौकरी करना आवश्यक हो गया है। इसका दुष्परिणाम है—परिवार के बुनियाद की ढिलाई। परिवार के लोगों का आपसी सम्बन्ध प्रायः औपचारिक होता जा रहा है। इससे परिवारों में आन्तरिक सुव्यवस्था बिगड़ रही है। इसे कैसे ठीक किया जाय—यही एक बड़ी समस्या हो गयी है। जिस छात्र-समस्या के विषय में हम सब शिकायत करते हैं, उसका मूल भी यहीं है। बढ़ते हुए बच्चों को यदि घर में उचित व्यवस्था और सुअवसर नहीं प्राप्त होता है, तो इसका क्या परिणाम होगा, वह स्पष्ट रूप से हमारे सामने है।

अन्त में हमारा निष्कर्ष यह है कि पुरुषों की तरह महिलाएँ भी यदि अपने जीवन के लक्ष्य का स्पष्ट निर्धारण कर उसी के अनुसार अपने कार्यों और कर्तव्यों का समन्वय कर सकें तो सब ठीक हो जायेगा। और एक बात हमें ध्यान रखनी होगी कि इसे भारतीय संस्कृति के अनुरूप ही करना होगा, दूसरों की संस्कृतियों के अनुसरण से नहीं।

# इहासने शुष्यतु मे शरीरम्

— स्वामी ब्रह्मेशानन्द
रामकृष्ण मिशन सेवाश्रम, वाराणसी

महाभिनिष्क्रमण अर्थात् सत्य के लिए अपने घर, परिवार, राज्य, सम्पत्ति आदि सभी का त्याग कर निकलने के बाद सिद्धार्थ अनेक साधकों एवं आचार्यों के पास भटकते रहे। उनमें से कुछ के उपदेशानुसार उन्होंने कठोर कृच्छ्र साधना भी की। राजप्रासाद में भोग की अति तथा साधना में तपस्या की अति करने के बाद वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि दोनों प्रकार की अतियाँ अहितकर हैं। और तब वे गया में बोधिवृक्ष के नीचे आसन जमा कर बैठे। पृथ्वी पर बिछे आसन को अपने हाथ से स्पर्श कर उन्होंने संकल्प किया।

"इहासने शुष्यतु मे शरीरम् त्वगस्थि मांसं
प्रलयं च यातु।
अप्राप्य बोधिं बहुकल्प दुर्लभां
नेहासनात्कायमतः चलिष्यते॥"

अर्थात् इस आसन पर मेरा शरीर सूख जाये, त्वचा, अस्थि एवं मांस नष्ट हो जायँ, लेकिन बहु-कल्प दुर्लभ बोधि को प्राप्त किये बिना इस आसन से मैं विचलित नहीं होऊँगा।

उच्च उद्देश्य की प्राप्ति के लिए दृढ़ संकल्प का द्योतक यह श्लोक स्वामी विवेकानन्द को अत्यन्त प्रिय था। काशीपुर उद्यान भवन में, जहाँ कैंसर ग्रस्त श्रीरामकृष्ण की सुश्रूषा के लिए एकत्रित भावी संन्यासी युवक भक्त जिस कमरे में रहते थे, उसकी दीवार पर स्वामी विवेकानन्द (उस समय नरेन्द्र नाथ दत्त) ने इस श्लोक को बड़े-बड़े अक्षरों से लिख दिया था। अपने पत्रों एवं प्रवचनों में भी वे अनेक बार इस श्लोक एवं भगवान बुद्ध के दृढ़ संकल्प का उल्लेख कर पाठकों एवं श्रोताओं को प्रोत्साहित किया करते थे। दृढ़ निश्चय, अध्यवसाय, धैर्य एवं आफलोदय प्रयत्न के बिना मुक्ति अथवा बोधि रूपी आध्यात्मिक लक्ष्य तो क्या, सामान्य सांसारिक सफलता प्राप्त करना भी संभव नहीं है। इसे समझते हुए भी अधिकांश साधकों के जीवन में इसका अभाव देखा जाता है। इस श्लोक को अनेक बार पढ़ने अथवा बुद्ध देव की जीवनी का अनुध्यान करने पर भी ऐसा दृढ़ संकल्प बहुत कम के जीवन में आ पाता है। इसके कई कारण हैं जो भगवान बुद्ध के उपर्युक्त निश्चय के विवेचन से स्पष्ट होंगे।

### (१) लक्ष्य के सम्बन्ध में स्पष्ट धारणा —

भगवान बुद्ध के उपर्युक्त उद्गार में लक्ष्य के विषय में उनकी स्पष्ट धारणा परिलक्षित होती है, जो किसी भी साधक के लिए अत्यन्त आवश्यक है। डाक्टर, वकील, प्राध्यापक, प्राचार्य, इंजीनियर, राजनैतिक नेता आदि बनना, धन कमाना, मकान बनाना इत्यादि सांसारिक समृद्धि के लक्ष्य बनाना एवं उनकी स्पष्ट धारणा करना आसान है, लेकिन मोक्ष, ईश्वर-दर्शन, ब्रह्मज्ञान, कैवल्य, बोधि आदि नामों से अभिहित चरम आध्यात्मिक लक्ष्य की न तो धारणा ही करना सरल है, और न ही उस पर अन्त तक टिके रहना। यों तो भारतीय संस्कृति में पला प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि मोक्ष ही जीवन का चरम लक्ष्य है। उसी तरह श्रीरामकृष्ण भाव-धारा से परिचित व्यक्ति भी ईश्वर-दर्शन को चर-मोद्देश्य समझता है। बातचीत में अपनी इस मान्यता

को हम व्यक्त भी करते हैं लेकिन हम इसे गंभीरता से नहीं लेते। उच्चतम, चरम एवं जीवन का सबसे महत्वपूर्ण विषय होते हुए भी वह हमारे लिए या तो गौण ही होता है या फिर अन्यान्य मान्यताओं की तरह ही एक विचार, सिद्धांत मात्र होता है, जिसकी व्यावहारिक उपयोगिता अथवा जीवन के साथ कोई गहरा सम्बन्ध नहीं होता। तो फिर क्यों न ईमानदारी से यह स्वीकार करें कि हमारे जीवन का उद्देश्य भगवद्दर्शन नहीं, और कुछ है ?स्वामी विवेकानन्द कहते थे, "यदि ईश्वर है तो उसे देखना चाहिए, यदि आत्मा है, तो उसका साक्षात्कार किया जाना चाहिए ।" और यदि कैवल्य अथवा बोधि जैसी कोई अवस्था है तो उसकी अनुभूति करनी चाहिए। अगर हम इसका प्रयत्न नहीं करते तो हम स्वामी जी की भाषा में नास्तिक हैं। एक चोर को यदि मालूम हो कि पास के कमरे में सोना है, तो वह उसे प्राप्त किये बगैर चैन नहीं ले सकता। अगर यह बात दृढ़ता पूर्वक हमारे मन में बैठ गयी हो कि बोधि बहुकल्प दुर्लभ है, चरमानन्द प्राप्ति की अवस्था है, तो क्या हम स्वर्णान्वेषी चोर की तरह चुप बैठे रह सकते हैं ? हमारा मोक्ष प्राप्ति के लिए अनाग्रह एवं पुरुषार्थ का अभाव ही इस बात का प्रमाण है कि हम उसके प्रति अस्पष्ट हैं।

एक ही चरम लक्ष्य के नाना नामों के कारण भी समस्या पैदा होती है। फिर शास्त्रादि में उसके माहात्म्य को पढकर, उसे पाने की व्यग्रता से छोटी मोटी अनुभूतियों को चरमावस्था समझने का भ्रम हो जाता है। इस विषय को अन्य लेख में व्याख्या की जा चुकी है। (देखिए-'साधक के अंतराय:विवेक शिखा, अप्रैल ८८) यहाँ केवल इतना स्पष्टीकरण देना ही पर्याप्त होगा कि कैवल्य, बोधि ईश्वर दर्शनादि क्षणिक अनुभूतियाँ मात्र नहीं हैं, बल्कि स्थायी अवस्थाएँ है। शंकराचार्य विवेक चूड़ामणि में ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान को बारंबार अभ्यास द्वारा दृढ़ करने की बात करते हैं। स्वयं श्रीरामकृष्ण ने प्रयत्न द्वारा माँ जगदम्बा के बार-बार दर्शन पाकर उनका चिर सान्निध्य लाभ किया था। इस आध्यात्मिक लक्ष्य की प्राप्ति होने पर साधक के चरित्र का समूल एवं स्थायी परिवर्तन हो जाता है। वह क्षणिक रूप से ही नहीं, बल्कि सदा के लिए पूर्ण रूपेण निर्वासना हो जाता है।

लक्ष्य-निर्धारण विषयक दूसरी कठिनाई है साधनों एवं निम्नतर कक्षाओं को लक्ष्य मानकर वहीं अटक जाने की। प्रत्येक उच्च लक्ष्य की प्राप्ति के क्रम में अनेक निम्न एवं निम्नतर लक्ष्य होते हैं। एम. डी. पास करके डॉक्टर बनने का लक्ष्य रखने वाला युवक पहले उच्च माध्यमिक परीक्षा पास करना अपना लक्ष्य बनाता है। उसके बाद इन्टर, फिर एम. बी. बी. एस और अन्त में एम. डी.। इसी तरह मोक्ष के लिए सर्वप्रथम निष्काम कर्मयोग द्वारा चित्तशुद्धि, उसके बाद उपासना या ध्यान द्वारा चित्त की एकाग्रता और अन्त में ज्ञान द्वारा मोक्ष प्राप्त किया जाता है। लेकिन निष्काम कर्मयोग में भी एक रस है उपलब्धि का एक सन्तोष है, जो अनेक साधकों को उसी स्तर पर रखता है। मोक्ष के लिए त्याग आवश्यक है—यह जान कर साधक संन्यास व्रत ग्रहण करते हैं। लेकिन कई साधक इसी को महान उपलब्धि मानकर उसी अवस्था में रुक जाते हैं, आध्यात्मिक प्रगति नहीं कर पाते। इस तरह प्रत्येक साधन-पद्धति में अनेक पड़ाव, कक्षाएँ हैं, जो गौण लक्ष्य या सोपान होते हुए भी चरम नहीं हैं। यही कारण है कि शास्त्रों में जहाँ इन विभिन्न साधनों की प्रशंसा कर इनकी आवश्यकता बतायी गयी है, वहीं अन्य स्थानों पर उनकी निन्दा भी की गयी है। जिन शाण्डिल्यादि विद्याओंका वर्णन वेदों में किया गया है, उन्हीं की ईशावास्योपनिषद् में यह कह कर निन्दा की गयी है कि वे घोरतर अन्धकार में ले जाती हैं। जिस प्रकार

डॉक्टर बनने की महत्वाकांक्षा रखने वाला विद्यार्थी इन्टर की परीक्षा के समय पूरे मनोयोग से उसी को तैयारी करता है. उसी तरह मोक्षाभिलाषी को भी निष्काम कर्मयोग की साधना के समय पूरे मनोयोग से वही करना चाहिए। लेकिन सदा याद रहे कि उसे आगे बढ़ना है: साधारण लकड़ी के जंगल के आगे चन्दन का जंगल है; उसके आगे चाँदी की खान, उसके आगे सोने की और उसके भी आगे हीरे-जवाहरात की। सात दरवाजों के भीतर राजा बैठा है। प्रत्येक दरवाजे पर सुसज्जित पहरेदार को राजा समझने की भूल हम न कर बैठें। साधना के सोपानों को शिखर समझ बैठने की संभावना से साधक को सतर्क करने के लिए सभी शास्त्रों में इन सोपान-क्रमों का वर्णन किया गया है। सदा याद रखना चाहिए कि चरम लक्ष्य एक ही हो सकता है, अनेक नहीं।

एक और बात है। चरम आध्यात्मिक लक्ष्य इतना दुरूह, इन्द्रिय एवं मन द्वारा ज्ञेय समस्त पदार्थों एवं अनुभवों से इतना पृथक है कि उसकी धारणा करना स्वाभाविक रूप से ही कठिन है। यही कारण है कि बुद्ध को शुरू-शुरू में भटकना पड़ा। यह कहा जा सकता है कि बुद्ध तो एक सत्यानुसन्धानी की तरह दुःख-निवृति का उपाय खोजने निकले थे, लक्ष्य की किसी कल्पना विशेष को लेकर नहीं। वस्तुतः लक्ष्य का विभिन्न प्रकार से वर्णन शास्त्रों के माध्यम से उपलब्ध होते हुए भी प्रत्येक साधक के लिए वह एक नवीन सत्यानुसन्धान की तरह होता है। बुद्ध के जन्म के पूर्व भी उपनिषदादि ग्रंथ विद्यमान थे, फिर भी बुद्ध को उसी सत्य का पुनराविष्कार करना पड़ा था। सिर्फ बुद्ध ही नहीं, श्रीरामकृष्ण एवं स्वामी विवेकानन्द भी इसी प्रकार के सत्यान्वेषी थे जिन्होंने ईश्वर के अस्तित्व के विषय में ही प्रश्न किया था एवं स्वयं के लिए उसकी सत्ता का पुनराविष्कार किया था।

बोधि को 'बहुकल्प दुर्लभ' कहा गया है। गीता में भी चरमानुभूति की दुर्लभता बतायी गयी है। अतः यह प्रश्न हो सकता है कि जब यह वस्तु इतनी दुर्लभ है, तो न जाने यह कब, किस जन्म में प्राप्त होगी, तब इस जन्म के लिए नाम-यश, ऐहिक सुख आदि को क्यों न लक्ष्य बना लिया जाय? इतना ऊँचा आदर्श बनाने पर कहीं ऐसा न हो कि न रहे घर के न रहे घाट के? माया मिली न राम? यह शंका बड़ी समीचीन है और सत्य तो यह है कि जिसके मन में ऐसी शंका उठती है, उन्हें बोधि, या मोक्ष को अपना लक्ष्य नहीं बनाना चाहिए। जो लोग इसे स्वीकार करते हैं उनके लिए तो स्वामी विवेकानन्द का उत्तर ही पर्याप्त है। "अगर राम न मिले तो क्या हम श्याम के साथ विवाह करके घर बसाएं? अगर अमृत न मिले तो क्या गटर का मैला पानी पी लें?" इहलोक के सुख, स्वर्ग सुख, नाम-यश, धन-संपद, ऋद्धि-सिद्धि देश या समाज की सेवा, इन सभी का पूरी तरह से त्याग करने पर ही उस चरम आनन्द की प्राप्ति हो सकती है। दूसरे शब्दों में इन सभी का त्याग ही वह लक्ष्य है जो मोक्षादि नामों से अभिहित है। सच्चा साधक यह समझ बूझ कर ही लक्ष्य निर्धारण का प्रथम चरण बढ़ाता है। उसे बहुकल्प दुर्लभ तो उसके अमूल्यत्व एवं अद्वितीयत्व को बताने के लिए कहा गया है। इसके लिए सर्वस्व त्याग करने तथा जन्म जन्मान्तर तक अथक प्रयत्न करने के लिए तैयार साधक के लिए तो वह इसी जन्म में इसी क्षण उपलब्ध हो सकता है।

(२) पथ का निर्धारण :—

देश काल एवं विशेषतः पात्र के अनुसार उपर्युक्त चरम लक्ष्य को पाने के अनेक पथ हैं। पुरातन भारतीय जीवन-प्रणाली में वर्णाश्रम धर्म का विभाजन इसी दृष्टि से किया गया था। छोटे समाज में पुरातन भारतीय पद्धति का, स्वधर्म रूप मोक्ष का

पथ निर्धारण कार्यकारी होते हुए भी अब, जब कि सामाजिक व्यवस्था अत्यन्त जटिल हो गयी है, उपयुक्त प्रतीत नहीं होता। पहले जीवन पद्धति का निर्णय अनायास हो जाता था, और इष्ट, मंत्र, एवं अन्य आध्यात्मिक निर्देश गुरु से प्राप्त हो जाया करते थे। लेकिन अब प्रत्येक साधक को पथ निर्धारण में तीन बातों का निर्णय लेना पड़ता है।

(१) वह किस जीवन पद्धति को अपनाये।

(२) वह चार योगों में से किस योग विशेष को अपनाये।

(३) वह किस मंत्र का जाप एवं इष्ट का चिन्तन करे।

**(क) जीवन पद्धति का निर्देश :—**

जीवन पद्धति से मेरा अर्थ लगभग पुरातन वर्णाश्रम धर्म से है। मैं विद्यार्थी जीवन के बाद गार्हस्थ्य जीवन में प्रवेश करूँ अथवा संन्यासी हो जाऊँ, या विधिवत् संन्यासव्रत ग्रहण न करके आजन्म अविवाहित जीवन व्यतीत करूँ? यदि संन्यासी बनूँ तो कर्मयोगी, सेवानिरत संन्यासी बनूँ या सभी प्रकार के सामाजिक कर्मों का त्याग कर जनसमाज से दूर रहूँ? किसी संन्यासी संप्रदाय का सदस्य बनूँ या अकेला जीवन निर्वाह करूँ? अगर अविवाहित लेकिन व्रतधारी संन्यासी न होऊँ, तो भी मैं कहाँ रह कर जीवन व्यतीत करूँ! पिता के परिवार में, किसी सामाजिक या धार्मिक संस्थान में, या स्वतंत्र रहूँ? जीवन पद्धति विषयक ये प्रश्न साधन-पथ से सीधे संबंधित न होते हुए भी आधुनिक जटिल समाज में सच्चे साधक के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण हो गये हैं। साधना की बाधाओं से बचने एवं मुख्य साधना पद्धति के अनुष्ठान की सहायता में इनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। साधक को अपनी रुचि, मनः स्थिति एवं संस्कारों के अनुसार ऐसे जीवन का चयन करना होगा जो उसके लिए न्यूनतम बाधाओं (Path of least resistance) वाला हो। सभी लोग गार्हस्थ्य जीवन के उपयुक्त नहीं होते, और न ही सभी संन्यासी बन सकते हैं। संघबद्ध जीवन कुछ लोगों के लिए अत्यन्त लाभप्रद हो सकता है लेकिन कुछ के लिए अत्यधिक पीड़ा दायक भी हो सकता है। साधना में जब तक कुछ प्रगति नहीं हो जाती तब तक ये बाह्य व्यवस्थाएँ तथा सामाजिक सामंजस्य की स्थितियाँ बहुत आवश्यक हैं। एक बार भीतरी, आन्तरिक स्थिरता एवं सन्तुलन प्राप्त हो जाने के बाद बाहरी सहायताएँ इतनी महत्वपूर्ण नहीं रह जातीं।

**(ख) योग विशेष का चयन :—**

विश्व में असंख्य साधना पद्धतियाँ प्रचलित हैं। जैन साधक एक प्रकार से साधना करते हैं तो बौद्ध और ईसाई दूसरे प्रकार से। प्रत्येक संप्रदाय विशेष ने सदियों के अभ्यास से अपनी-अपनी विशिष्ट साधन पद्धति निर्धारित कर ली है। साधक यदि इनमें से किसी एक पद्धति को अपनी रुचि के अनुसार स्वीकार कर ले तो कोई समस्या ही नहीं है। स्वामी विवेकानन्द ने आधुनिक युग के लिए समस्त साधना पद्धतियों को चार योगों में विभक्त कर दिया है। या यों कह सकते हैं कि इन सभी पद्धतियों में ज्ञान, भक्ति कर्म और राजयोग में से एक, अनेक अथवा सभी के न्यूनाधिक अंश विद्यमान रहते हैं। दार्शनिक चिन्तन में रुचि रखने वाला विचार-प्रवण साधक ज्ञान योग को प्राथमिकता देगा। भावुक साधक भक्ति योग को, कर्मठ कर्म योग को और ध्यान में रुचि रखने वाला राजयोग को अधिक महत्व देगा। लेकिन कोई भी ऐसा व्यक्ति बिरले ही होगा जो केवल ज्ञान योगी होगा जिसमें भक्ति का लेश मात्र भी नहीं होगा। इसी तरह अन्य योगों के विषय में भी समझ लेना चाहिए। वस्तुतः प्रत्येक साधक में चारों ही अंश रहते हैं,

और चारों योगों का समावेश एक सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। स्वयं स्वामी विवेकानन्द ने इस पर बल दिया है।

अब प्रश्न केवल यही रह जाता है कि साधक किस योग को अपनी साधना पद्धति में प्राथमिकता दे, और उसके साथ अन्य योगों का कितने-कितने अनुपात में समावेश करे। अधिकांश साधकों के लिए प्रारंभ में कर्मयोग को प्राथमिकता देना उचित होते हुए भी इस विषय में कोई कड़ा नियम नहीं बनाया जा सकता। कुछ प्रयोग करके, अपनी रुचि एवं मनः स्थिति समझकर इस विषय में स्वयं निर्णय लेना होता है।

(ग) इष्ट एवं मंत्र का निर्धारण :—

ध्यान की प्रणाली जप के लिए मंत्र एवं इष्ट का निर्धारण वस्तुतः साधना पथ का सबसे अनिवार्य एवं अन्तरंग अंग है, जिसका निर्देश स्वयं सद्गुरु ही करते हैं। मार्ग विषयक उपर्युक्त तीन बातों के निर्णय में सदगुरु की की भूमिका अत्यधिक महत्व पूर्ण है। उनके अभाव में साधन पथ पर अग्रसर अनुभवी साधक प्रारंभिक साधक को सहायता प्रदान कर सकते हैं। और यह भी यदि उपलब्ध न हो तो स्वयं साधक को साहस पूर्वक निर्णय लेकर कदम बढ़ाना चाहिए। घबराने से काम नहीं चलता। और दीर्घकाल तक अनिश्चितता की स्थिति में पड़े रहना भी उचित नहीं है, यदि साधक सचमुच सच्चा है तो उसे पथ निर्देश एवं निर्देशक प्राप्त हो ही जायेंगे। और यदि भटक भी गया तो ऐसे लगनवाले साधक को कोई न कोई ठीक राह दिखा ही देगा। भटकाव और रुकाव, ठोकरें एवं असफलताएँ प्रत्येक मार्ग मे हैं। वे तो साधना का सौंदर्य हैं। स्वयं भगवान बुद्ध को पहले विभिन्न स्थानों में भटकना पड़ा था तथा साधना मे असफताएँ प्राप्त हुई थीं और तब कहीं बहुत देर बाद, कई प्रयोगों के बाद वे मध्यम मार्ग को खोज कर बोधिवृक्ष के नीचे लक्ष्य एवं पथ का पूर्ण रूपेण असंदिग्ध निदर्शन पाकर निश्चय के साथ संकल्प कर सके थे। श्लोक में 'इहासने' शब्द उनके स्पष्ट मार्ग निर्धारण का परिचायक है।

(३) लक्ष्य प्राप्ति तक प्रयत्न करने का संकल्प :—

श्लोक में "अप्राप्य बोधिं बहुकल्प दुर्लभाम्" बुद्ध के चरम लक्ष्य प्राप्त करने तक न रुकने के दृढ़ संकल्प का द्योतक है। ठीक यही बात स्वामी विवेकानन्द अपने प्रसिद्ध उद्घोष में कहते हैं--'उठो, जागो और लक्ष्य प्राप्त किये बिना विश्राम न करो।', इस संकल्प में दो परस्पर विरोधी भावों का सम्मिश्रण है : एक है अपनी पूरी शक्ति लगाकर दीर्घकाल तक निरंतर लगन के साथ साधना करने की मानसिक तत्परता और दूसरा, लक्ष्य प्राप्ति तक धैर्य पूर्वक प्रतीक्षा करने की सामर्थ्य। प्रसिद्ध सूफी सन्त जुनैद कहते है कि "अगर मुझे हजार साल की उम्र भी मिले तो भी जर्रा बराबर इबादत में कमी न करूँ (साधना में रत्ती भर कमी न करूँ)। लक्ष्य प्राप्ति न हो तो भी साधना को न छोड़ना, देहान्त हो जाये तो भी विमुख न होना, इस भाव को दुराग्रह नहीं समझना चाहिए। चरम लक्ष्य की प्राप्ति ने लिए न तो किसी साधना की अति हो सकती है, और न दुराग्रह। भगवान के लिए शरीर त्याग होना तो बड़े सौभाग्य की बात है। इस पर इसका अर्थ यह नहीं कि जान-बूझ कर आत्महत्या कर ली जाय, या प्रारंभ में ही अपनी सामर्थ्य से अधिक करने के प्रयत्न में हानि उठायी जाये। तेजी से पर्वत की चोटी पर चढ़ने के जोश में यदि कोई बिना पूर्व तैयारी के अचानक दौड़कर चढने का प्रयत्न करे तो पचास कदम चढ़ते न चढ़ते या तो वह थक कर चूर हो जायगा या गिर कर हाथ पैर तुड़वा बैठेगा। यही कारण है कि धैर्य एवं तीव्रता का सन्तुलन साधना के प्रत्येक स्तर पर बनाये रखना आवश्यक है। बुद्ध में वह

सन्तुलन था, इसीलिए वे शीघ्र सफल हो सके थे। जो साधक तीव्रता के साथ उपयुक्त साधना का कल्पान्त तक अनुष्ठान करने के लिए कटिबद्ध होता है, वह एक ऐसी मनः स्थिति को प्राप्त करता है, जो अपने आप में एक उपलब्धि, एक सिद्धि है। सूफी सन्त हबीब आदमी अपने पूर्व जीवन में हद दर्जे के कंजूस एवं क्रूर सूदखोर थे। अचानक एक घटना से उन्होंने अपने जीवन को बदलने का निश्चय किया और घर से अपने पीर (गुरु) के सामने तौबा (अपराध स्वीकार करना तथा पुनः न दुहराने का व्रत लेना) करने रवाना हुए। रास्ते में खेल रहे बच्चे एक दूसरे से यह कह कर भागने लगे कि हट जाओ कहीं जालिम हबीब के पैरों से उड़ी धूल हमें लगकर नापाक (अपवित्र) न कर दे। तौबा करके लौटते हबीब को देखकर बच्चे पुनः दूर हटे, लेकिन अब यह कहते हुए की हट जाओ कहीं ऐसा न हो कि हमारी धूल पवित्र हुए हबीब पर पड़े और उसके कारण हम दोषी ठहराये जाएँ। तात्पर्य यह कि हबीब का अपने को बदलने का संकल्प इतना प्रबल था कि संकल्प मात्र से वे पवित्र हो गये थे। किसी भी सच्चे साधक को कल्पान्त तक ठहरना नहीं पड़ता। पर इसके लिए कल्पान्त तक ठहरने को धैर्य वाली मनः स्थिति की भी आवश्यकता है।

(४) विघ्न एवं प्रलोभनों में अडिग रहने की सामर्थ्य :—

और जब ऐसी मनः स्थिति से बलीयान् होकर भगवान बुद्ध आसन पर विराजित हुए तब मार ने उन पर प्रबल आक्रमण किया। इस घटना को चित्रित करने वाले चित्रों में एक ओर कुछ विकराल रूपधारी दैत्य एवं मनुष्य विभिन्न आयुधबों से बुद्ध को मारने का भय दिखाते एवं दूसरी ओर रमणीय सुन्दरियाँ हावभाव, कटाक्ष द्वारा उन्हें अपनी ओर आकर्षित करने का प्रयत्न करती दिखायी जाती हैं। कष्ट एवं मृत्यु का भय एवं इहलोक एवं पारलौकिक भोग, सत्ता एवं शक्ति का लोभ, मार के ये दो रूप इन चित्रों द्वारा प्रदर्शित किये जाते हैं। सभी महापुरुषों के जीवन में ये उपस्थित होते हैं। श्रीरामकृष्ण को माँ जगदम्बा ने एक दुशाला, सोने के सिक्के भरा थाल, एवं दो युवतियाँ दिखायी थीं। और उसके बाद वे उन्हें अष्ट सिद्धियाँ देने भी आयी थीं। लेकिन श्रीरामकृष्ण प्रलोभित नहीं हुए थे। और बुद्ध भी भयभीत या विचलित नहीं हुए थे। हममें और इन महापुरुषों में यही अन्तर है कि प्रलोभन दोनों के जीवन में आते हैं। वे उनपर विजय पा लेते हैं, हम पराजित हो जाते हैं। हमारे लिए तो अद्वितीय पुरुषार्थी विश्वामित्र का दृष्टान्त अधिक प्रेरणादायक होगा। अनेक बार प्रलोभनों में पड़कर साधना से च्युत होने पर भी वे पुनः उठ खड़े हुए थे एवं नये सिरे से साधना की थी। लेकिन यह तो स्पष्ट ही है कि इस प्रकार की दुर्घटनाएँ महान शक्ति क्षय करती हैं। करे कराये पर पानी फिर जाता है, और सारी मेहनत फिर से करनी पड़ती है।

योग की उच्च अवस्थाओं में प्राप्त अणिमादि अष्ट सिद्धियों के अतिरिक्त भी निम्न स्तर पर छोटे-मोटे ऐसे असंख्य प्रलोभन हैं जो साधक को रोक सकते हैं। एक ईसाई सन्त का तो कहना है कि इस धरा पर मानव का सारा जीवन और कुछ नहीं केवल प्रलोभन ही है। "The Life of man on earth is a temptation। जन्म-जन्मान्तर के असंख्य प्रकार के संस्कार नाना सूक्ष्म वासनाओं के रूप में अथवा स्थूल बाह्य परिस्थितियों के माध्यम से साधक के सामने उपस्थित होते हैं। यदि लक्ष्य, एवं पथ की स्पष्ट धारणा एवं दृढ़ संकल्प साधक के पास हो तो उसकी समग्र शक्तियाँ इतनी केन्द्रीभूत हो जाती हैं कि वह बड़ी आसानी से इन बाधाओं पर विजय प्राप्त कर लेता है। यही है भगवान

बुद्ध की अभूत पूर्व सफलता का रहस्य।

बुद्ध, महावीर, रामकृष्ण, विवेकानन्द जैसे महापुरुष सैकड़ों, सहस्त्रों वर्षों में एकाध ही जन्म लेते हैं। हम चाहें भी तो उनके जैसे नहीं हो सकते। चाहकर भी उनके जैसी अधूमिल सम्यक् दृष्टि एवं अविचल सम्यक् संकल्प हमारा नहीं हो सकता। यह सत्य हमें विनम्र बनाता है, तथा इन्हीं महापुरुषों से प्रेरणा एवं पथ निर्देश प्राप्त करने में समर्थ करता है। इत्यलम्।

□

# श्रीरामकृष्ण और नाम संकीर्तन

—स्वामी विदेहात्मानन्द

रामकृष्ण मठ, नागपुर

स्वामी विवेकानन्दजी ने एक बार अपने परम श्रद्धेय गुरु श्रीरामकृष्ण के विषय में कहा था कि वे बाहर से भक्त तथा अन्तर्हृदय से ज्ञानी थे। उनके जीवन में सर्वोच्च भक्ति तथा परम ज्ञान का अद्भुत एवं अपूर्व समन्वय है। उनका चरित्र लोकविश्रुत है, अतः हम उनके जीवन तथा वाणी के केवल उन्हीं अंशों की चर्चा करेंगे, जो हमारे प्रकृत विषय से सम्बद्ध हैं। अपने पास आनेवाले अनगिनत साधकों में से अधिकांश को वे भक्ति-मार्ग में ही प्रवृत्त करते हुए नाम-संकीर्त्तन का उपदेश दिया करते थे। उनके कुछ उपदेश निम्न-लिखित हैं—

'कलिकाल में भगवदीय भक्ति है—सदा उन प्रभु के नाम और गुणों का कीर्त्तन करना। जिन्हें समय नहीं, उन्हें कम-से-कम शाम को तालियाँ बजाकर एकाग्रचित्त हो 'श्रीमन्नारायण, नारायण' कहकर उनके नाम का कीर्त्तन करना चाहिए। अन्य युगों में नाना प्रकार के कठोर साधनयुक्त तप का नियम था, पर इस युग में उनका अनुष्ठान बहुत कठिन है। एक तो जीव की आयु बहुत अल्प है, उसमें भी अनेक बीमारियाँ उसे निर्बल बना देती हैं, वह कठिन तपस्या करे तो कैसे करे? अतः नामकीर्त्तन ही उसका कर्त्तव्य है। नाम का गुणगान करने से देह से सब पाप भाग जाते हैं। देहरूपी वृक्ष में पाप पक्षी हैं, उनके लिये नामकीर्त्तन मानो हथेली बजाना है। हथेली बजाने से जिस प्रकार वृक्ष के ऊपर के सभी पक्षी भाग जाते हैं, उसी प्रकार उनके नाम-गुणकीर्त्तन से सभी पाप भाग जाते हैं। फिर देखो, जैसे मैदान के तालाब का जल धूप से स्वयं ही सूख जाता है, वैसे ही नाम-गुण कीर्त्तन से पाप रूपी तालाब का जल स्वयं ही सूख जाता है।

'सदा ही उनका नाम-गुण-गान, कीर्त्तन और प्रार्थना करनी चाहिए। पुराने लोटे को प्रतिदिन माँजना होगा, एक बार माँजने से क्या होगा? भगवान् का नाम लेने से देह-मन शुद्ध हो जाते हैं। ईश्वर के नाम पर ऐसा विश्वास होना चाहिए—क्या मैंने ईश्वर का नाम लिया, अब भी मेरा पाप रहेगा? मेरा अब बन्धन क्या है? पाप क्या है?'

'चैतन्यदेव ने इस नाम का प्रचार किया था,

अतएव अच्छा है। देखो चैतन्यदेव कितने बड़े पण्डित थे? वे प्रेम में हँसते, रोते, नाचते, गाते हैं।.....एक बार वे मेड गाँव के पास से जा रहे थे। उन्होंने सुना कि इस गाँव की मिट्टी से ढोल बनता है। बस, भावावेश में विह्वल हो गये क्योंकि संकीर्त्तन के समय ढोल का ही वाद्य होता है।

'जानकर अनजान या भ्रम से अथवा और किसी प्रकार से क्यों न हो, श्रीभगवान् का नाम लेने से उसका फल अवश्य मिलेगा। कोई तेल लगाकर स्नान करने जाय तो उसका जैसा स्नान होता है, वैसा ही यदि किसी को ढकेलकर पानी में गिरा दिया जाय तो उसका भी स्नान होता है तथा यदि कोई घर में सोया हो और उसके बदन पर पानी डाल दिया जाय तो उसका भी वैसा ही स्नान हो जाता है।

'कलिकाल के लिए है भक्तियोग, नारदीय भक्ति। ईश्वर का नाम-गुणगान और व्याकुल होकर प्रार्थना—'हे ईश्वर! मुझे ज्ञान दो, भक्ति दो, दर्शन दो,।.....भक्ति ही सार है।' भगवान् के नाम-गुणों का कीर्त्तन करते-करते भक्ति प्राप्त होती है। सब काम छोड़कर तुम्हें संध्या के समय उनका नाम लेना चाहिए। अँधेरेमें ईश्वर की याद आती है। यह भाव आता है कि अभी तो सब दीख रहा था, किसने ऐसा किया!'

अब हम उनके जीवन की कुछ ऐसी घटनाओं का वर्णन करेंगे जो उनकी नाम-संकीर्त्तन के प्रति अभिरुचि प्रदर्शित करती हैं।

### परमहंस जी का संकीर्त्तन-प्रेम

बालकाल से ही श्रीरामकृष्ण को प्रातः-सायं तालियाँ बजाकर नाम-संकीर्त्तन करने का अभ्यास था। कभी-कभी वे भावविभोर होकर नृत्य करते हुए, 'हरि बोल हरि बोल', 'हरि गुरु गुरु हरि', 'हरि मेरे प्राण, गोबिन्द मेरे जीवन' मन कृष्ण, प्राण कृष्ण, ज्ञान कृष्ण, ध्यान कृष्ण बोध कृष्ण, बुद्धि कृष्ण, तुम जगत् हो—जगत् तुममें है।' मैं यन्त्र हूँ, तुम यन्त्री हो' आदि का उच्च स्वर मे कीर्त्तन किया करते थे। अद्वैत वेदान्त की साधना कर निर्विकल्प-समाधि की अनुभूति कर लेने के पश्चात् भी वे प्रतिदिन ऐसा ही नाम-संकीर्त्तन किया करते थे। एक दिन दक्षिणेश्वर के पंचवटी नामक स्थान में तीसरे पहर वे अपने वेदान्त के आचार्य स्वामी तोतापुरीजी के साथ बैठकर धर्मचर्चा कर रहे थे। संध्या हो जाने पर श्रीरामकृष्ण ने उनसे वार्तालाप करना बंद कर दिया और वे ताली बजा-बजाकर संकीर्त्तन करने लगे। उनके इस आचरण को देखकर श्रीमान् तोतापुरी अवाक् होकर सोचने लगे कि ये परमहंस रामकृष्ण, जो वेदान्त-मार्ग के इतने उत्तम अधिकारी हैं, जिस निर्विकल्प-समाधि को पाने में मुझे चालीस वर्ष लगे, उसे वे एक दिन में उपलब्ध कर लेनेवाले हैं, तथापि वे इस प्रकार हीन अधिकारी के समानआचरण क्यों कर रहे हैं? उनसे रहा न गया। वे हँसी करते हुए बोल उठे—'अरे, रोटी क्यों ठोकते हो?' यह सुनकर श्रीरामकृष्णदेव ने भी हँसते हुए कहा—'वाह रे! मैं ईश्वर का नाम ले रहा हूँ। और आप कह रहे हैं कि "मैं रोटी ठोंक रहा हूँ।" पुरीजी भी उनकी बालक-जैसी बातों को सुनकर हसने लगे एवं उन्होंने अनुभव किया कि श्रीरामकृष्ण का यह आचरण निरर्थक नहीं है, उसके भीतर अवश्य ही ऐसा कोई गूढ़ तात्पर्य निहित है, जिसे वे ठीक-ठीक समझ नहीं पा रहे हैं। अतः उन्होंने इस कार्य का प्रतिवाद न करना ही उचित समझा।

### चैतन्य महाप्रभु का कीर्त्तन देखना

एक बार श्रीरामकृष्ण देव के मन में श्रीचैतन्य महाप्रभु के सर्वजन-मनोमोहक नगर-संकीर्त्तन देखने

की इच्छा हुई। जगन्माता ने उनकी इस इच्छा को पूर्ण करने के लिए उन्हें निम्नलिखित दर्शन कराया था। उस समय वे अपने कमरे के बाहर उत्तर की ओर मुँह किये खड़े थे; उन्होंने देखा कि आध्यात्मिक भावों में विभोर एक अपार जनसमूह अद्भुत अलौकिक संकीर्त्तन करता हुआ तरंग की भाँति बढ़ा चला आ रहा है। इस दल के आगे चल रहे हैं भगवत्प्रेम में मतवाले चैतन्य महाप्रभु और उनके दोनों ओर उनके पार्षद नित्यानन्द एवं अद्वैत भी धीरे-धीरे कदम रखते आगे बढ़ रहे हैं। उनमें से कोई-कोई भक्त प्रेम में उन्मत्त होकर उद्दाम ताण्डव करते हुए अपने हृदय का उल्लास व्यक्त कर रहे हैं। इतने लोगों का समागम हुआ है कि कोई-ओर छोर नहीं दीख पड़ता। यह टोली आगे बढ़ती हुई वृक्षों के पीछे लुप्त होती जा रही थी। एक अन्य समय इस घटना की चर्चा करते हुए श्रीरामकृष्ण ने कहा था कि यह पूरा दर्शन उन्हें भाव-नेत्रों से नहीं, वरन् खुली आँखों से हुआ था।

### श्याम बाजार में कीर्तनानन्द

१८७५ ई० में जब श्रीरामकृष्ण अन्तिम बार अपनी जन्मभूमि कामारपुकुर का दर्शन करने गये, तब वहाँ से वे अपने भानजे हृदयराम के ग्राम शिहड़ भी गये। वहाँ पहुँचकर उनके सुनने में आया कि उस स्थान से थोड़ी ही दूर 'कुलई-श्यामबाजार नामक ग्राम है, जहाँ अनेक वैष्णव रहा करते हैं। वे संकीर्त्तन आदि के द्वारा उस स्थान को आनन्दमय बनाये रखते हैं। श्रीरामकृष्ण भी वहाँ जाकर उस कीर्त्तन को देखने एवं उसमें भाग लेने को उत्सुक हो उठे। अतः हृदयराम के साथ वहाँ जाकर उन्होंने बेलटे के श्रीयुत नटवर गोस्वामी के घर सात दिन निवास किया तथा श्यामबाजार में वैष्णवों का कीर्तनानन्द देखा। श्यामबाजार ग्राम में उन्होंने ज्यों ही प्रवेश किया, त्योंही उन्हें चैतन्यदेव का दर्शन मिला, जिससे वे समझ गये कि इस गाँव के निवासी महाप्रभु के भक्त हैं।

एक बार कामारपुकुर के रईस श्रीईशानचन्द्र मल्लिक ने उन्हें अपने घर के कीर्तनानन्द में सम्मिलित होने का निमन्त्रण दिया। वहाँ कीर्तन के समय उनका भावावेष देखकर स्थानीय वैष्णवों ने उनके प्रति तीव्र आकर्षण अनुभव किया। उनकी भावसमाधि की बात विद्युद्वेग से चारों ओर फैल गयी और उनके साथ आनन्द प्राप्त करने के लिए दूर-दूर के गांवों से संकीर्तन-दल क्रमशः वहाँ जुटने लगे। इस प्रकार श्यामबाजार एक विशाल जन-समुद्र में परिणत हो गया तथा वहाँ दिन-रात संकीर्तन होने लगा। उस सम्पूर्ण अंचल में ऐसी चर्चा फैल गयी कि एक ऐसे भक्त का आगमन हुआ है, जो भजन करते समय सात बार मरकर सातों बार जी उठता है। यह सुनकर श्रीरामकृष्ण को देखने के लिए लोग वृक्षों तथा घरकी छतों पर चढ़ने लगे और आहार-निद्रा तक भूल गये। इस प्रकार तीन दिनों तक वहाँ संकीर्तनानन्द की धारा प्रवाहित होती रही। और उन्हें देखने एवं उनका चरणस्पर्श करने के लिए लोग इतने उतावले हो उठे कि उन्हें स्नान एवं भोजन के लिए भी अवकाश न रहा। तदनन्तर वे हृदयराम को साथ लेकर धीरे-से शिहड़ को खिसक गये, तब जाकर कहीं आनन्दोत्सव का विराम हुआ। इसी अवधि में एक बार बेलटे में नटवर गोस्वामी के घर एक भोज के अवसर पर इन्हें श्रीकृष्ण और गोपियों का दर्शन मिला। इन्हें ऐसा लगा कि इनका सूक्ष्म-शरीर श्रीकृष्ण के चरणों का अनुसरण किये चला जा रहा है।

### पानीहाटी का महोत्सव

कलकत्ते से कुछ मील उत्तर की ओर गंगातट पर पानीहाटी नाम का एक ग्राम है। वहाँ पर प्रतिवर्ष ज्येष्ठ मास की शुक्ला त्रयोदशी को वैष्णव

सम्प्रदाय का एक विशेष मेला लगा करता है। चैतन्य महाप्रभु के अन्तरंग पार्षद नित्यानन्द एक बार धर्मप्रचार करते हुए वहाँ आये थे। गोस्वामी रघुनाथ दास, जो महाप्रभु का आदेश पाकर घर में ही निवास कर रहे थे, उनसे मिलने के लिए आये। तब नित्यानन्द ने रघुनाथ दास से कहा था—'अरे तू घर से केवल भाग-भाग कर आता है और हमसे छिपाकर प्रेम का स्वाद लेता रहता है। हमें पता तक नहीं लगने देता। आज तुझे दण्ड दूँगा, तू चिउड़े का महोत्सव कर और भक्तों की सेवा कर।' रघुनाथ ने उस आदेश को सानन्द शिरोधार्य किया तथा नित्यानन्द के दर्शनार्थ आये सैकड़ों लोगों को गंगातट पर भोजन कराकर परितृप्त किया। बाद में जिस दिन वे गृहत्याग करके सदा के लिए महाप्रभु के पास नीलाचल चले गये, उसी दिन उनकी स्मृति में वहाँ के भक्तगण प्रतिवर्ष 'चिउड़ा-महोत्सव मनाया करते हैं। उस दिन वहाँ विविध स्थानों के वैष्णव भक्त एकत्र होते हैं और पूरा दिन भजन, कीर्तन तथा नाम स्मरण में बीतता है।

श्रीरामकृष्ण प्रारम्भ से ही प्रायः प्रतिवर्ष उक्त उत्सव में भाग लेने जाया करते थे; परंतु १८८० ई० से अपने जीवन के अन्तिम कुछ वर्ष वे विविध कारणवश वहाँ नियमित रूप से न जा सके थे। तथापि १८८३ ई० तथा १८८५ ई० में उन्होंने उक्त उत्सव में भाग लिया था।

१८ जून, १८८३ ई० सोमवार का दिन था। भक्त रामचन्द्र मास्टर महाशय के साथ कलकत्ते से दक्षिणेश्वर आये। श्रीरामकृष्ण को प्रणाम कर वहीं उत्तरवाले बरामदे में उन्होंने प्रसाद पाया। राम कलकत्ते से जिस गाड़ी में वहाँ आये थे, उसी में बैठकर श्रीरामकृष्ण पानीहाटी को चले। उनके साथ राखाल, मास्टर, राम, भवनाथ तथा और भी दो-एक भक्त रवाना हुए।

पानीहाटी के महोत्सव-स्थलपर गाड़ी के पहुँचते ही राम आदि भक्त यह देखकर विस्मित रह गये कि श्रीरामकृष्ण, जो अभी-अभी बैठे विनोद कर रहे थे, यकायक अकेले ही उतरकर बड़े वेग से दौड़ रहे हैं। बहुत ढूँढ़ने पर उन्होंने देखा कि वे नवद्वीप गोस्वामी के संकीर्तन-दल में नृत्य कर रहे हैं, और बीच-बीच में समाधिस्थ भी हो रहे हैं। समाधि की अवस्था में कहीं गिर न पड़ें, इसलिए नवद्वीप गोस्वामी उन्हें बड़े यत्न से सँभाल रहे हैं। संकीर्तन के समय श्रीरामकृष्ण का दर्शन करने के लिए लोग चारों ओर कतार बाँधकर खड़े हैं। कोई-कोई सोच रहे हैं कि क्या श्रीगौराङ्ग ही पुनः प्रकट हुए हैं। चारों ओर हरि-ध्वनि सागर की तरंगों के समान उमड़ रही है। चारों ओर से लोग उनके चरणों पर फूल चढ़ा रहे हैं और बतासे लुटा रहे हैं तथा एक बार उनका दर्शन पा लेने को धक्कम-धक्का कर रहे हैं। श्रीरामकृष्ण अर्धबाह्य दशा में नृत्य करते हुए फिर बाह्य दशा में आकर गाने लगे, जिसका भावार्थ यों है—

'हरि का नाम लेते ही जिनकी आँखों से आँसुओं की झड़ी लग जाती है, वे दोनों भाई आये हैं, जो स्वयं नाचकर जगत् को नचाते हैं, वे दोनों भाई आये हैं, जो स्वयं रोकर जगत् को रुलाते हैं और खाकर भी प्रेम की याचना करते हैं, वे आये हैं। श्रीरामकृष्ण के साथ सब उन्मत्त हो नाच रहे हैं और अनुभव कर रहे हैं कि गौराङ्ग और निताई हमारे समाने नाच रहे हैं।'

श्रीरामकृष्ण फिर निम्नांकित भाव का गाना गाने लगे—

'गौरांग के प्रेम की हिलोरों से नदद्वीप डावाँ-डोल हो रहा है।' आदि।

संकीर्तन की तरंग राघव के मन्दिर की ओर बढ़ रही है। वहाँ परिक्रमा और नृत्य आदि करने

के बाद श्रीविग्रह को प्रणाम कर वह तरंगायित जनसंघ गंगातट पर अवस्थित श्रीराधाकृष्ण के मन्दिर की ओर बढ़ रहा है। संकीर्तनकारों में से ही लोग श्रीराधाकृष्ण के मन्दिर में घुस पाये हैं। अधिकांश लोग दरवाजे से ही एक दूसरे को ढकेलते हुए झाँक रहे हैं।

श्रीरामकृष्ण श्रीराधाकृष्ण-मन्दिर के आँगन में पुनः नृत्य कर रहे हैं। वे बीच-बीच में समाधिस्थ हो रहे हैं और चारों ओर से फूल-बतासे उनके चरणों पर पड़ रहे हैं। आँगन के भीतर बारंबार हरि ध्वनि हो रही है। वही ध्वनि सड़क पर आते ही हजारों कण्ठों से उच्चारित होने लगी। गङ्गा पर नावों से आने-जाने वाले लोग चकित होकर इस सागर-गर्जन के समान उठती हुई ध्वनि को सुनने लगे और वे स्वयं भी 'हरिबोल', 'हरिबोल' कहने लगे।

श्रीरामकृष्ण के उपदेश तथा उनके जीवन की उपर्युक्त घटनाएँ आधुनिक युग के त्रितापदग्ध जीवन को भगवन्नाम संकीर्तन के द्वारा अपने जीवन तथा समाज में सुख शान्ति का विस्तार करने के लिए प्रेरित करती हैं।

(कल्याण से साभार)

□

धारावाहिक

# स्वामी अद्भुतानन्द (लाटू महाराज) की जीवन कथा

—चन्द्रशेखर चट्टोपाध्याय

अनुवादक—स्वामी विदेहात्मानन्द
रामकृष्ण मठ, नागपुर

"लोरेन बाबू के पिताजी का देहावसान हो जाने के पश्चात् उनके परिवार को बड़ी तकलीफें उठानी पड़ी थीं। लोरेन बाबू के सगे-सम्बन्धियों ने उनके विवाह की व्यवस्था की थी। यह सुनकर वे (ठाकुर) बड़े चिन्तित हुए। एक दिन वे गाड़ी में मुझे साथ लेकर लोरेन बाबू के घर गये थे। लोरेन बाबू ने कहा—'मैं तो बाहर निकल रहा था। आप लोग जब टाला के मोड़ पर थे तभी दीख गये, इसीलिए नहीं निकला।' यह सुनकर ठाकुर ने कहा—'घर में बैठे ही हमलोगों को कैसे देख लिया?' इस पर लोरेन बाबू ने बहुत सी बातें कहीं। जानते हो! साधना करने पर एक ऐसी अवस्था आती है, जिसमें दूर की चीजें दीख पड़ती हैं, और दूर हो रही बातें सुनाई पड़ती हैं। इसी कारण लोरेन बाबू हम लोगों को देख सके थे। यह सब सुनने के बाद उन्होंने (ठाकुर ने) कहा—'अजी ये सब बातें किसी से कहना नहीं; और भी कितना सब देखोगे, सुनोगे, पर किसी से कहना मत, समझे।' उस दिन लोरेन बाबू को ठाकुर उसी गाड़ी में दक्षिणेश्वर ले आये। विविध बातों के पश्चात् उन्होंने कहा—देख, मेरे कार्य के निमित्त ही माँ तुझे खींच लायी हैं, तेरा विवाह नहीं होगा।' इस

पर लोरेन बाबू ने क्या कहा था, जानते हो ? —'घर में बड़ी किल्लत है, धन के अभाव में काम नहीं चल रहा है, बोलिए मैं क्या करूँ ? माँ, भाई, बहन का कष्ट अब देखा नहीं जाता।' लोरेन बाबू की बात सुनकर ठाकुर ने कहा—'तू तो 'माँ' के पास गया था, पर विवेक-वैराग्य प्रेम आदि माँग लिया, थोड़े पैसे क्यों नहीं माँग लिये ! अब मैं क्या कर सकता हूँ ? जा, माँ की इच्छा से तुम लोगों को साधारण भोजन और वस्त्र का अभाव न रहेगा।' जैसे ही उनके मुख से यह बात निकली, वैसे ही लोरेन बाबू ने क्या कहा जानते हो ? 'पर यह जान लीजिए कि मैं विवाह न करूँगा।' इस पर ठाकुर ने कहा—'माँ ने तुम्हें जो साधु के वेष में दिखाया था, वह क्या गलत हो सकता है जी ?'" यह बात सुनकर काशी के पाण्डे हवेली के मकान में एक भक्त ने लाटू महाराज से पूछा था—'महाराज ! हम लोगों ने तो सुना है कि नरेन्द्रनाथ अखण्ड के घर से आये थे—नर ऋषि के अंश से जन्मे थे। और पढ़ा है कि स्वर्ग से एक ज्योति कलकत्ते की ओर पड़ी और उसी ज्योति से उनका जन्म हुआ। कहीं भी तो यह सुनने में नहीं आया कि ठाकुर को माँ ने नरेन्द्रनाथ को साधु के वेष में दिखाया था।'

लाटू महाराज—जानते हो ! ब्राह्मसमाज में एक बार एक नाटक हुआ था। जिसमें लोरेन बाबू ने साधु का रोल किया था। ठाकुर वह नाटक देखने को गये थे। लोरेन बाबू जब साधु के वेष में (रंगमंच पर) आये तो ठाकुर अचानक उठ खड़े हुए और उनकी ओर अच्छी तरह देखते हुए कहने लगे, 'यह तो ठीक मिल रहा है जी, यह तो ठीक मिल रहा है।'+ उसके बाद वे लोरेन बाबू को पुकारने लगे। लोरेन बाबू उस समय (नाटक की) वेषभूषा में थे इसलिए (मंच से) उतर कर नहीं आना चाहते थे, तब केशव बाबू ने कहा—'वे जब कह रहे हैं, तो उतर आओ न।' फिर निकट आ जाने पर उन्होंने लोरेन बाबू का हाथ धर कर कहा—'देख ! एक दिन माँ ने तुझे इसी वेष में दिखाया था। अब देख रहा हूँ यह उससे ठीक-ठीक मिल रहा है।'

ये बातें सुनकर एक भक्त ने कहा—'महाराज ! आप ऐसी सब बातें कह रहे हैं, जो किसी अन्य पुस्तक में नहीं मिलती।'

लाटू महाराज—हाँ ! क्या उनकी सारी बातें कही जा चुकी हैं ! वे कितने ही प्रकार से कितनी बातें कहते थे, क्या कोई उन सभी बातों को जान सकता है, या कह सकता है ! जिसने जितना सुना है, वह उतना ही बताएगा। उनकी बातों का क्या कोई ओर छोर है ? नहीं, उनकी बातों का कोई अन्त नहीं ! देखो, ईश्वर के बारे में मनुष्य कितने दिनों से कितनी ही बातें करता आ रहा है, परन्तु क्या कोई उसे समाप्त कर सका है ? इसी प्रकार उनकी (श्रीरामकृष्ण की) बातें भी कोई समाप्त नहीं कर सकता। .....

नरेन्द्रनाथ के बारे में लाटू महाराज की अन्यान्य बातें (बंगला) 'सत्कथा' ग्रन्थ में प्रकाशित हो चुकीं, अतः विस्तार के भय से हम उन्हें यहाँ नहीं दे रहे हैं।

अब हम राखाल महाराज के दक्षिणेश्वर जीवन की उन घटनाओं पर आते हैं, जिनके बारे में हमने थोड़ा बहुत लाटू महाराज के मुख से सुना है।

'एक बार राखाल बाबू ने दक्षिणेश्वर में ठाकुर के भोग का थोड़ा सा अग्रभाग खा लिया था। इसकी जानकारी होने पर उन्होंने राखाल बाबू से कहा था—'यह क्या रे ? भोग के पहले ही तूने अग्रभाग ले लिया ? अग्रभाग ली हुई चीज क्या माँ को निवेदित की जाती है रे ?' राखाल

+'सत्कथा' नामक बंगला ग्रन्थ में है, 'यह ठीक हुआ है, यह ठीक हुआ है।' हमने यहाँ श्रीयुत विभूतिभूषण मैत्र के अनुलिखन के अनुसार यह प्रसंग दिया है।

बाबू का विवाह हो जाने के बाद मनोमोहन बाबू उन लोगों (अर्थात् राखाल बाबू और उनकी पत्नी) को एक दिन दक्षिणेश्वर ले आये। ठाकुर ने उन दोनों को आशीर्वाद दिया और राखाल बाबू की पत्नी से कहा—'अजी ! तुम्हें डरने की जरूरत नहीं, मैं राखाल को यहाँ रोककर न रखूँगा बीच बीच में वहाँ भेज दूँगा।' तदुपरान्त ठाकुर ने उन लोगों से कहा—'एक बार उधर भी (अर्थात् नौबतखाने में श्रीमाँ के पास) जाना।' और मुझे धीरे से कह दिया—'देख, जाकर कह देना कि रुपया देकर मुँह देख ले।' श्रीमाँ ने रुपया देकर राखाल बाबू की पत्नी का मुख देखा, समझे ?"

एक भक्त—रुपया देकर मुख देखने को क्यों कहा, महाराज ?

लाटू महाराज—अरे ! राखाल उनका मानस-पुत्र है न ! पुत्र की बहू के आने पर क्या खाली हाथ मुख देखा जाता है ? तुम लोगों के घर में तो ऐसी प्रथा है ही—जानते नहीं ?

एक भक्त—महाराज ! उनकी तो तब परमहंस अवस्था थी, तो भी यह सब मानते थे ?

लाटू महाराज—उन्हें और भी अधिक यह सब मानकर चलना पड़ता था : वे कहते थे—'अरे यदि मैं तिल भर भी इधर-उधर कर बैठूँ तो तुम लोग (अर्थात् शिष्यगण) ताड़ भर कर बैठोगे। मैं यदि सोलह आने करूँ, तभी तुम लोग एक आना करना सीखोगे।'....जानते हो, राखाल बाबू के अधिक दिन दक्षिणेश्वर रहने पर वे उन्हें घर भेज देते थे ! घर से लौटने पर कहते—'जा पहले तीन चुल्लू गंगा जल पी आ, फिर यहाँ माँ के मन्दिर में जाना।' ठाकुर ने जिस दिन सुना कि राखाल बाबू के एक लड़का हुआ है, उस दिन उन्होंने हमलोगों से कहा—'माँ की इच्छा से राखाल का सारा भोग कट गया। अब उसे मेरे काम में लगना होगा।'....पुत्र होने के बाद से राखाल बाबू का दक्षिणेश्वर आना जाना बढ़ गया। वे उन्हें केवल जप-ध्यान करने को कहते थे। ....वे (ठाकुर) यदि किसी दूसरे को अधिक स्नेह करते तो राखाल बाबू को मनोवेदना होती। इसे देखकर ठाकुर ने एक दिन उनसे कहा—'अरे ! साधु का सब त्याग हो जाता है, पर अभिमान नहीं जाता। अभिमान को त्याग दे, तब तू सबकुछ समझ सकेगा।' बाद में राखाल बाबू उस अभिमान को त्याग सके थे, समझे ? इसीलिए तो विवेकानन्द भाई ने कहा था—'आध्यात्मिकता में राखाल हम सभी से बड़ा है।'+ राखाल बाबू जिस दिन दक्षिणेश्वर में रहते उस दिन उनके (ठाकुर के) आनन्द की सीमा न रहती। उस रात वे हमलोगों को साथ लेकर एक ही कमरे में ध्यान करते थे। (थोड़े ही दिनों के लिए उन्होंने यह व्यवस्था की थी। बाद के दिनों में वे हर एक को अलग अलग जगह पर ध्यान करने भेजते थे।)

अब हम १८८५ ई० की एक घटना का वर्णन करने जा रहे हैं—"गोपाल दादा (स्वामी अद्वैतानन्द) की बड़ी इच्छा थी कि उन्हें ठाकुर से दीक्षा प्राप्त हो, परन्तु वे तो किसी को दीक्षा देते नहीं थे। (वे अपने अन्तरंग भक्तों में शक्ति का संचार करते थे, पर दीक्षा न देते थे।) सबके सामने उन्हें यह अनुरोध करने में लज्जा आती थी, इसलिए एक दिन दोपहर में भोजन के पूर्व ठाकुर को उद्यान में अकेले टहलते देखकर उन्होंने उनके समक्ष अपने मन की इच्छा व्यक्त की। उस दिन मैंने देखा कि गोपाल दादा जमीन पर घुटने टेककर बैठे थे और उनके दोनों चरण पकड़कर खूब रो रहे थे। अन्त में क्या हुआ हुआ जानते हो ?— ठाकुर ने उनका हाथ पकड़कर जमीन से उठाया। तब भी मैंने देखा कि गोपाल दादा रो रहे थे। उन्होंने क्या कहा यह तो मेरे सुनने में न आया, परन्तु उसके बाद से मैं गोपाल दादा को प्रतिदिन सन्ध्या के समय विष्णु मंदिर में कीर्तन करते देखता था।" (क्रमशः)

+ग्रन्थकार को यह प्रसंग लिखने की इच्छा न थी, परन्तु श्री 'म' के आदेश पर उसे यह प्रसंग इस ग्रन्थ में समावेशित करना पड़ा।

## रामकृष्ण मिशन, बेलुड़ मठ

## कार्यकारिणी समिति की रिपोर्ट का सार-संक्षेप (१९८६-८७)

रामकृष्ण मिशन की ७८ वीं वार्षिक बैठक रविवार १३ दिसम्बर १९८७ को अपराह्न ३:३० बजे बेलुड़ मठ में आयोजित हुई। रामकृष्ण मिशन के अध्यक्ष स्वामी गम्भीरानन्द ने सभापतित्व किया। सभा में कार्यकारिणी द्वारा प्रस्तुत वर्ष १९८६-८७ के प्रतिवेदन का सारांश निम्नलिखित है।

यह वर्ष रामकृष्ण संघ की स्थापना का शताब्दी वर्ष रहा। सर्व धर्म समन्वय के मसीहा श्रीरामकृष्ण के अवतरण की १५० वीं वर्ष-गाँठ भी इसी वर्ष सम्पन्न हुई। भारत और विदेशों में इन दोनों अवसरों को विधिवत मनाया गया। रामकृष्ण मिशन इन्स्टीट्यूट ऑफ कल्चर, कलकत्ता ने एकेडमी ऑफ साइंस एण्ड द यूनियन ऑफ राइटर्स, मास्को के सहयोग से श्रीरामकृष्णदेव पर एक तीनदिवसीय गोष्ठी का आयोजन किया। विदेशों के कई केन्द्रों ने अन्तर्धार्मिक सम्मेलनों का आयोजन किया। रामकृष्ण संघ ने सोवियत सरकार द्वारा मास्को में आयोजित "इन्टरनेशनल फोरम फॉर ए न्युक्लियर वर्ल्ड फॉर द सरवायवल ऑफ ह्यूमैनिटी" में भी प्रतिनिधित्व किया।

आलोच्य वर्ष में मिशन ने राहत एवं पुनर्वास कार्यों में १९, ८५, ८१० रुपयों का व्यय किया। इसके अतिरिक्त उदार एवं परोपकारी व्यक्तियों से दान में प्राप्त विविध सामग्रियाँ भी पीड़ित एवं जरूरतमंद लोगों में बाँटी गयीं।

रामकृष्ण मठ ने भी अपने राहत एवं पुनर्वास कार्यों में ३५, ५९, ०७७ रुपये व्यय किया।

इस वर्ष मठ एवं मिशन के कुछ शाखा केन्द्रों द्वारा प्रचुर धनराशि व्यय करके ग्रामीण एवं आदिवासी कल्याण कार्यक्रमों को लागू किया गया।

आलोच्य वर्ष में कई महत्त्वपूर्ण उपलब्धियाँ हुईं। उनमें उल्लेखनीय नयी गतिविधियाँ रहीं विद्यापीठ, मद्रास में विवेकानन्द अध्ययन संस्थान और इटानगर (अरुणाचल-प्रदेश) के अस्पताल में कृत्रिम अंग प्रत्यंग संयोजन—केन्द्र का उद्घाटन। अपने ८ अस्पतालों, ६६ औषधालयों एवं १४ चल चिकित्सालयों के द्वारा मिशन ने सराहनीय चिकित्सा कार्य किया। ४० लाख से अधिक रोगियों की चिकित्सा की गयी जिसमें ग्रामीण एवं आदिवासी लोगों का सर्वाधिक प्रतिशत रहा।

८ लाख से अधिक लोगों की सेवा रामकृष्ण मठ द्वारा संचालित अस्पतालों एवं चिकित्सालयों के द्वारा की गयी।

मिशन की १३७७ शैक्षिक संस्थानों में छात्रों की संख्या १, २७, १३८ थी जबकि मठ की ३२ शैक्षणिक संस्थानों में छात्रों की संख्या ७, ८६३ थी। इनमें १२३१ संस्थान, जिनमें ७६४ अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र सम्मिलित हैं, ग्रामीण एवं आदिवासी अंचलों में स्थित हैं।

विदेशों में स्थित मठ और मिशन केन्द्र शिक्षा, चिकित्सा, सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक क्षेत्रों में विविध प्रकार की गतिविधियों में संलग्न रहे।

बेलुड़ मठ स्थित मुख्यालय के अतिरिक्त वर्षान्त में भारत एवं अन्य देशों में मिशन एवं मठ की क्रमशः ७६ तथा ७१ शाखाएँ कार्यरत थीं।

(स्वामी हिरण्मयानन्द)
महा सचिव

## विवेकानन्द युव-मंच—बम्बई

बम्बई, २० मार्च। रामकृष्ण मिशन, बम्बई के निर्देशन में गत अगस्त १९८७ ई० में यहाँ एक 'विवेकानन्द यूथ फोरम' (विवेकानन्द युव मंच) की स्थापना की गयी जिसकी कई शाखाएं भी बम्बई महानगर के विभिन्न क्षेत्रों में स्थापित हो गयी हैं। इस फोरम के द्वारा सुश्री रेखा कालेकर के सम्पादकत्व में अंग्रेजी में एक द्विमासिक बुलेटिन 'द कॉल ऑफ द यूथ' के नाम से प्रकाशित होने लगी है। इस बुलेटिन में स्वामी विवेकानन्द के जीवनदायी विचारों के साथ फोरम (मंच) के विभिन्न कार्य-कलापों का उल्लेख तथा लघु कविताएं एवं प्रेरक लघु लेख भी प्रकाशित होते हैं।

विवेकानन्द यूथ फोरम के चार मुख्य उद्देश्य हैं—

[१] सांस्कृतिक जागरण का संचार करना

[२] युवजनों को अर्थपूर्ण एवं रचनात्मक जीवन यापन करने में सहायता प्रदान करना

[३] युवक एवं युवतियों के सहयोग से विचार पुष्कर (थिंक टैंक) का निर्माण करना

[४] सामाजिक परिवर्तन के लिए विवेकानन्द के भावादर्शों का व्यावहारिक प्रयोग करना

इसके निम्नोक्त कार्यक्रम हैं—

२२ मई, सेमिनार १०-१२ दिन, 'विज्ञान और धर्म' पर विवेकानन्द की धारणा

कार्यशाला : १-४ अपराह्न : अन्तर-सम्भावनाओं की निकासी

१२ जून : कार्यशाला : प्रातः ९.३० तथा संध्या ५ बजे : प्रभावी संप्रेषण और नेतृत्व

१८ जून : संध्या ५ से ६ : 'नव विश्व संस्कृति' में विवेकानन्द की धारणा।

३ जुलाई ; युवा शिविर : १०-००-४.३०

७ अगस्त : कार्यशाला : ५.०० संध्या

१५ अगस्त : युवा मंच दिवस २.००-५-३० संध्या

४ सितम्बर : सेमिनार : १०-१२ दिन: विवेकानन्द की 'मनुष्य और समाज' विषयक धारणा

२ अक्टूबर : कार्यशाला ९.३० प्रातः ५-०० संध्या

२० नवम्बर : युवा शिविर १०.३० प्रातः ५-०० संध्या

४ दिसम्बर : कार्यशाला ९.३० प्रातः ५-०० संध्या

१६ दिसम्बर अध्ययन केन्द्र ५-६ संध्या : विवेकानन्द की 'शिक्षा' विषयक धारणा

१२ जनवरी—छात्र सम्मेलन—२-००—५.०० संध्या

२२ जनवरी—युवा शिविर—८.०० प्रातः—४.०० संध्या

# विवेकानन्द साहित्य

कुल १० खंड, डबल डिमाई साईज में अनुक्रमणिका समेत पृष्ठ संख्या प्रति खंड लगभग ४५० मजबूत और आकर्षक सजिल्द नव प्रकाशित तृतीय संस्करण का मूल्य प्रति खंड रु० २८, सम्पूर्ण सेट रु० २९५। पुस्तक विक्रेताओं को विशेष कमीशन् दिया जाता है।

इन ग्रन्थों में स्वामीजी के दर्शन, धर्म, राष्ट्र, समाज आदि विषयक ओजपूर्ण व्याख्यानों तथा गम्भीर लेखों का पूर्ण संकलन है जो अंग्रेजी में प्रकाशित और, अप्रकाशित उनकी सभी रचनाओं, पत्रों, कविताओं, व्याख्यानों, प्रवचनों तथा कथाओं का हिन्दी अनुवाद है। अनुवादकों में पं० सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पं० सुमित्रानन्दन पंत, डा० प्रभाकर माचवे, श्री फणीश्वरनाथ 'रेणु', डा० नर्मदेश्वर प्रसाद आदि ख्यातिलब्ध साहित्यकारों के नाम उल्लेखनीय हैं।

# हमारे अन्य प्रकाशन

| | | |
|---|---|---|
| श्रीरामकृष्ण (संक्षिप्त जीवनी) | रु० | ३.७५ |
| श्रीरामकृष्ण की कहानियां | रु० | ५.९० |
| श्रीरामकृष्ण की जीवन कथा | रु० | ८.०० |
| श्रीसारदा देवी | रु० | २९.९० |
| श्रीसारदा देवी (संक्षिप्त जीवनी) | रु० | २.७५ |
| स्वामी विवेकानन्द (संक्षिप्त जीवनी) | रु० | ३.७५ |
| विवेकानन्द की कहानी | रु० | ६.९० |
| मन और उसका निग्रह | रु० | ४.९० |
| साधना और सिद्धि | रु० | ५.९० |
| समाधि के सोपान | रु० | ४.९० |
| धर्म क्यों ? | रु० | ३.९० |
| स्वामी विवेकानन्द का मानवतावाद | रु० | ५.७५ |

# अद्वैत आश्रम

५ डिही इन्टाली रोड

कलकत्ता ७०० ०१४

# कुछ अवश्य संग्राह्य जीवनी-ग्रन्थ

| | | |
|---|---|---|
| श्रीरामकृष्णलीलाप्रसंग (तीन भागों में) | स्वामी सारदानन्द | प्रथम भाग—रु २०.००<br>द्वितीय भाग—रु. २२.००<br>तृतीय भाग रु. १७.०० |
| श्रीरामकृष्ण : संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश | —स्वामी अपूर्वानन्द | —रु. ३.०० |
| माँ सारदा | —स्वामी अपूर्वानन्द | —रु. १७.०० |
| श्री सारदादेवी : संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश | —स्वामी अपूर्वानन्द | —रु. ३.०० |
| विवेकानन्द-चरित | —सत्येन्द्रनाथ मजूमदार | रु. २०.०० |
| स्वामी विवेकानन्द : संक्षिप्त जीवनी तथा उपदेश | —स्वामी अपूर्वानन्द | —रु. ३.०० |
| श्रीरामकृष्ण भक्तमालिका | —स्वामी गम्भीरानन्द | प्रथम भाग—रु. २८.०० |
| स्वामी शिवानन्द | —स्वामी शिवतत्वानन्द | —रु. ६.०० |
| स्वामी विज्ञानानन्द | —स्वामी विश्वाश्रयानन्द | —रु. ३.०० |
| साधू नागमहाशय | —शरच्चन्द्र चक्रवर्ती | —रु. ६.५० |
| आचार्य शंकर | —स्वामी अपूर्वानन्द | —रु. ६.५० |

अधिक जानकारी के लिए लिखें—

रामकृष्ण मठ,

(प्रकाशन विभाग)

धन्तोली, नागपुर—440 012

# स्वामी विवेकानन्दकृत साहित्य

## धर्म तथा अध्यात्म

| | | | |
|---|---|---|---|
| धर्मविज्ञान | ५·०० | भगवान श्रीकृष्ण और भगवद्गीता | ४·५० |
| धर्मतत्त्व | ४·५० | भगवान बुद्ध का संसार को संदेश एवं अन्य व्याख्यान और प्रवचन | ६·०० |
| धर्मरहस्य | ३·०० | देववाणी | ८·०० |
| हिन्दूधर्म | ४·५० | वेदान्त | ४·२५ |
| हिन्दूधर्म के पक्ष में | २·०० | व्यावहारिक जीवन में वेदान्त | ३·५० |
| शिकागो वक्तृता | १·५० | आत्मानुभूति तथा उसके मार्ग | ५·०० |
| आत्मतत्त्व | ५·०० | | |

## संभाषणात्मक

| | | | |
|---|---|---|---|
| विवेकानन्दजी के संग में | १३·०० | विवेकानन्दजी की कथाएँ | ५·०० |
| स्वामी विवेकानन्दजी से वार्तालाप | ५·०० | विवेकानन्दजी के सान्निध्य में | ३·०० |

स्वामी विवेकानन्दजी के महत्त्वपूर्ण व्याख्यान,
लेख, पत्र, काव्य आदि का प्रातिनिधिक सचयन

पृष्ठ : ५५० ग्रंथालय संस्करण : रु० २१/- सस्ता संस्करण : रु० १०/-

अधिक जानकारी के लिए लिखें :—


## विवेकानन्द साहित्य संचयन

रामकृष्ण मठ

(प्रकाशन विभाग)

धन्तोली, नागपुर—४४० ०१२

डाक पंजीयित संख्या—सी० एच० पी० — १४-८३ अंक— ५— १९८८

विवेक वाणी

# पहले मनुष्य बनिये

एक बात पर विचार करके देखिये, मनुष्य नियमों को बनाता है या नियम मनुष्यों को बनाते हैं ? मनुष्य रुपया पैदा करता है या रुपया मनुष्यों को पैदा करता है ? मनुष्य कीर्ति और नाम पैदा करता है या कीर्ति और नाम मनुष्य पैदा करते हैं ? मेरे मित्रो, पहले मनुष्य बनिये, तब आप देखेंगे कि वे सब बाकी चीजें स्वयं आपका अनुसरण करेंगी । परस्पर के घृणित द्वेषभाव को छोड़िये.....और सदुद्देश्य, सदुपाय, सत्साहस एवं सद्वीर्य का अवलम्बन कीजिये । आपने मनुष्य योनि में जन्म लिया है तो अपनी कीर्ति यहीं छोड़ आइये ।

(प्रा० पा० २२-२३

मुझे पूर्ण विश्वास है कि कोई भी मनुष्य या राष्ट्र अपने को दूसरों से अलग रखकर जी नहीं सकता.....लेन-देन ही संसार का नियम है और यदि भारत फिर से उठना चाहे तो यह परमावश्यक है कि वह अपने रत्नों को बाहर लाकर पृथ्वी की जातियों में बिखेर दे और इसके बदले में वे जो कुछ दे सकें उसे सहर्ष ग्रहण करे । विस्तार ही जीवन है और द्वेष मृत्यु । हमने उसी दिन से मरना शुरू किया जब से हम अन्यान्य जातियों से घृणा करने लगे और यह मृत्यु बिना इसके किसी दूसरे उपाय से रुक नहीं सकती कि हम फिर से विस्तार को अपनायें जो कि जीवन है ।

( पत्रा० १,२०७-८ )

आनन्द अध्येता
पारिवारिक मासिक पत्रिका
बालक प्रकाशन,
पटना-800004, फोन 50341

मूल्य : २.५०

श्रीमती गंगा देवी, जयप्रकाश नगर, छपरा (बिहार) द्वारा प्रकाशित एवं
श्रीकांत लाभ द्वारा जनता प्रेस, नया टोला, पटना—४ में मुद्रित ।

के सौजन्य से श्री हिमालय प्रेस में कवर मुद्रित